सुखदास।

जार्ज इलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास

'साइलस मारनर'

का

हिन्दी रूपान्तर

लेखक—

श्रीयुत 'प्रेमचन्द'

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई।

द्वि० श्रावण १९७७।

अगस्त १९२०।

प्रथमावृत्ति] [मूल्य दस आने।

सजिल्दका एक रुपया।

प्रिन्टर मंगेशराव कुळकर्णी
कर्नाटक स्टीम प्रेस
४३४ ठाकुरद्वार बम्बई
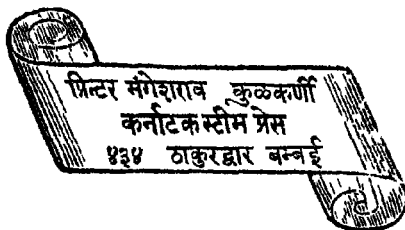
भूमिका।

'साइलस मारनर' अँगरेजीका मशहूर उपन्यास है। वह मानव-हृदयके रहस्योंका एक अनूठा चित्र है। लेखकने भावोंकी मार्मिकताको ऐसी उत्तम रीतिसे चरितार्थ किया है कि अँगरेजी भाषाके कितने ही विज्ञ जनोंके विचारमें यह अँगरेजीका सर्वोत्तम उपन्यास है। इसकी भाषा इतनी चुटीली, इतनी मर्मस्पर्शी, और इतनी प्रतिभापूर्ण है कि उसका उत्तम अनुवाद करना किसी हिन्दीके धुरन्धर लेखकहीका काम है। 'सुखदास' उसके अनुवाद होनेका दावा नहीं करता। यह उसका केवल रूपान्तर मात्र है, केवल अलंकारविहीन छाया है। इसे अँगरेजी कपड़ोंके बदले, देसी कपड़े पहना दिये गये हैं, भाव, स्थान, वेष, रीति नीति सब कुछ जातीय रंगमें रंग दिये गये हैं—कमसे कम इसकी चेष्टा की गई है। इस वेषपरिवर्त्तनमें हमें विवश होकर बहुत कुछ उलट फेर करना पड़ा है। इलियटके उपन्यासोंमें अँगरेजी जीवनका बहुत चोखा रंग होता है। हमको यह सब मिटाना पड़ा। सुखदास उस साइलस मारनररूपी दूधका मक्खन, चाहे न हो पर उस लकड़ीका हीर अवश्य है, अथवा इसे उस तसवीरका रंग-रहित खाका समझिए। हमने चेष्टा की है कि पात्रोंके द्वारा कोई ऐसे भाव न प्रगट कराये जायँ, जो हम भारतवासियोंको अपरिचितसे जान पड़े—किस्सा वही रहे पर स्वाभाविकता हाथसे न जाने पाय। हम कहाँतक इस प्रयत्नमें सफल हुए हैं इसका अनुमान करना पाठकों पर छोड़ना ही उचित है।

—लेखक।

जार्ज इलियट।

'जार्ज इलियट' का असली नाम 'मेरी एन्न इवेन्स' था। उसने स्त्री होकर पुरुषका नाम रक्खा था, इसका कारण यह है कि उस समय लेखिकाओंको साहित्य-समाजमें आदरकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। यद्यपि उसके समयमें भी कई उपन्यासलेखिकाएँ वर्तमान थीं जिन्हें अपना असली नाम प्रकट करनेमें कोई संकोच न होता था, और आजकल तो सैकड़ों महिलाएँ उपन्यास लिखती हैं। पर तौ भी उस समयमें 'लेडी नावेलिस्टों' की कुछ न कुछ उपेक्षा अवश्य होती थी। पर मेरी एन्न अधिक समय तक गुप्त न रह सकीं। चार्ल्स डिकिन्सने जो उस समयके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार थे, जार्ज इलियटकी पहली रचनाको देखकर स्पष्ट कह दिया कि इसकी लिखनेवाली अवश्य कोई स्त्री है।

मेरी एन्नका जन्म नवंबर १८१९ को हुआ। उसके पिताका नाम राबर्ट इवेन्स था जो बढ़ई और राजका व्यवसाय करता था। वह बहुत ही कार्य्यकुशल और सत्यवादी मनुष्य था। जार्ज इलियटने 'आडम बीड' नामके उपन्यासमें अपने पिताका बहुत ही वास्तविक और उत्तम चरित्र अंकित किया है।

मेरी एन्नकी अवस्थाके २१ वर्ष अपनी जन्मभूमिहीमें व्यतीत हुए। यहीं उसको ग्रामीण जीवनका वह अनुभव प्राप्त हुआ जिसका उसने अपने उपन्यासोंमें बड़ी मार्मिक रीतिसे वर्णन किया है। ग्रामीण जीवनका उल्लेख ही इलियटके उपन्यासोंका प्रधान गुण है। यहाँ उसने जो कुछ देखा और सुना वह उसके हृदयस्थान पर अंकित होता गया। कल्पनाके उत्कृष्ट रंगोंमें रंग कर उसके बाल्यावस्थाके देहाती मनुष्य अमर हो गये हैं।

मेरी एन्नने १६ वर्षकी अवस्थामें स्कूलकी शिक्षा समाप्त कर ली और वह अपने पिताकी गृहिणी बन गई। स्कूलमें वह एक साधारण बालिका थी। उसकी भावी प्रतिभाका उस समय तक विकास न हुआ था। हाँ पुस्तकावलोकनसे उसे विशेष रुचि थी और उसके स्वभावमें विचारशीलता और दयालुताकी मात्रा अधिक थी।

मेरी एन्न जब २१ वर्षकी युवती हुई तो धीरे धीरे धार्मिक विषयोंसे उसका परिचय होने लगा। उस समयमें यूरुपके सभी प्रदेशोंमें ईसाई मत पर विद्वज्जनोंको शंकायें होने लगी थीं और स्वतंत्र धार्मिक विचारोंका प्राबल्य होता जाता था। मेरी एन्न पर विचारस्वातंत्र्यका जादू चल गया। उसकी कई स्वाधीन-मतावलम्बियोंसे मित्रता हो गई और उनके सत्संगका उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि अंतको उसने भी ईसाई धर्मको त्याग दिया और गिरजाघरमें ईशवन्दनाके निमित्त जानेसे वह संकोच करने लगी। उसके बूढ़े और प्राचीन धर्मके भक्त पिताको उसके विचार-परिवर्तनसे अत्यन्त दुःख हुआ। विशेष इस लिए कि मेरी एन्न गिरजामें न जाती थी। निकट था कि यह धार्मिक मतभेद उन्हें सदाके लिए पृथक् कर देता पर मित्रोंके समझाने बुझानेका यह असर हुआ कि मेरी एन्नने अपने पिताको प्रसन्न रखनेके लिए गिरजाघर जाना स्वीकार किया। पर वह अपने स्वतंत्र विचारोंको न त्याग सकी। इसी धुनमें उसने जर्मन भाषामें लिखे हुए 'ईसा मसीह' के एक जीवनचरित्रका अँगरेजी भाषामें अनुवाद किया जिसमें अस्वाभाविक चमत्कारोंका खूब खंडन किया गया था। यद्यपि उसने अपने प्राचीन धर्मको छोड़ दिया था तिसपर भी वह दुराग्रहपूर्ण शंकावादका समर्थन न करती थी। वह ईसाई धर्मके सद्गुणोंको स्वीकार करती थी। उसके ग्रंथोंको देखकर यह कोई नहीं कह सकता कि वह एक पक्के ईसामतानुरागीकी रचना नहीं है। वह धार्मिक सरलता और दृढ़ताको हृदयसे आदर करती है और ईसाई धर्म तथा जीवनके

बहुत ही सहृदयतापूर्ण चित्र खींचती है। कदाचित् वह अर्धशिक्षित जनताके लिए ईसाई मतहीको उपयुक्त समझती थी। जनताको विचारस्वाधीनतासे लाभके बदले उलटे हानि होनेका भय था। इसे वह शिक्षितसमुदायहीके लिए अनुकूल समझती थी। विद्वानोंमें सिद्धान्तप्रेम जो काम करता है वही काम जनतामें श्रद्धा करती है और श्रद्धा सिद्धान्तोंसे प्रेम नहीं करती—वह अवतारोंमें भक्ति करती है।

सन् १८४९ में रावर्ट इवेन्स साहेबका देहान्त हो गया। मेरी एव्हने पिताकी मृत्युके पश्चात् कुछ समय तक यूरुपके प्रधान प्रधान-देशोंमे भ्रमण किया। वहाँसे लौट कर वह लंदनके एक प्रसिद्ध मासिकपत्रकी सहायक सम्पादिकाका काम करने लगी। यहाँ उसे बड़े बड़े लेखकों और विद्वानोंसे संसर्गका अवसर मिला। हर्बर्ट स्पेन्सरसे इसी समय उसका परिचय हुआ और दोनोंमें मित्रता हो गई, जो जीवनपर्य्यन्त रही। इन्हीं विद्वान् मित्रोंमें एक सज्जन जार्ज हेनरी लुइस थे। उन्हींकी प्रेरणासे मेरी एव्हने साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया। १८५८ में उसने अपनी कई गल्पोंका एक संग्रह प्रकाशित कराया जिसमें ईसाइयोंके धार्मिक जीवनके चित्र खीचे गये थे। इस पुस्तकका चार्ल्स डिकिन्स आदि उपन्यास-कारोने ऐसा उदारतापूर्ण स्वागत किया कि उससे उत्तेजित हो कर जार्ज इलियटने १८५९ में अपना पहला उपन्यास ' आडम बीड' प्रकाशित किया। ' साइलस मारनर' जो उसका तीसरा उपन्यास है १८६१ में प्रकाशित हुआ। यह उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है।

ये चारों ग्रंथ जार्ज इलियटके सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं। इन्हींने उसकी ख्याति देशदेशान्तरोंमें फैला दी। इन पुस्तकोंमें उसने उसी जीवनके दृश्य और चरित्र दिखाये हैं जिन्हें उसने स्वयं अपने बाल्यकालमें देखे थे और इसी कारण ये बहुत ही सजीव और मार्मिक हो गये हैं।

इसके पश्चात् उसने फिर इटालीकी सैर की और वहाँसे लौट कर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसका नाम 'रोमोला' है। १८६८ में उसका 'फैलिक्स होल्ट' निकला जो कुछ समालोचकोंके विचारमें रवीन्द्रबाबूके 'घरे और बाहरे' का मूलाधार है। १८७६ में उसकी अंतिम पुस्तक 'डेनियल डेरोंडा' प्रकाशित हुई। इन पिछली रचनाओंमें जार्ज इलियटको वह सफलता नहीं हुई जो पूर्वकी रचनाओंमें हुई थी। इनमें उसने अपनी विद्वत्ता, अपने दार्शनिक सिद्धान्तों और अपनी नैतिक उपदेशोंको चरितार्थ किया है। चरित्रोंका विश्लेषण, उनका उत्थान और पतन और उनकी मनोवृत्तियोंकी मीमांसा इन ग्रन्थोंके प्रधान गुण हैं। पर इनमें वह सजीविता और स्वाभाविकता नहीं आसकी है जो उसकी पूर्वरचनाओंके महत्त्वकी कारण है। उपन्यास वही उत्तम होता है जो स्वाभाविक और रुचिकर हो। विद्वत्ताके लिए यहाँ बहुत कम स्थान होता है। चरित्रोंकी मीमांसा अवश्य उपन्यासोंमें होनी चाहिए किन्तु इतनी जटिल और सूक्ष्म नहीं कि प्रत्येक वाक्य और विचारकी छानबीन की जाय। इससे कहानीके प्रवाहमें बाधा पड़ती है और पाठक उकता कर पढ़ना छोड़ देता है। जार्ज इलियटके पिछले ग्रन्थोंमें यह दोष है जिसके कारण वे बहुत कम पढ़े जाते हैं। वे शुष्क और निर्जीव दार्शनिक, नैतिक और सामाजिक सिद्धान्तोंके बोझसे लदे हुए हैं। १८८० में ६१ वर्षकी अवस्थामें जार्ज इलियटका देहान्त हो गया।

—प्रेमचन्द।

सुखदास।

पहला अध्याय।

एक ऐसा समय भी गुजरा है जब कि भारतके गाँव गाँव और छोटी छोटी बस्तियोंमें स्त्रियाँ चरखा काता करती थीं। केवल साधारण श्रेणीकी स्त्रियाँ ही नहीं, रेशमी वस्त्रोंसे विभूषित स्त्रियाँ भी इस कामके करनेमें संकोच न करती थीं। कभी कभी दूरस्थ बस्तियोंमें साधारण प्रकार

और पीले रंगके फेरीवाले भी दिखाई देते थे, जो हृष्ट पुष्ट ग्रामीणोंकी अपेक्षा लघुतर मालूम होते थे। कृषकोंके कुत्ते उन्हें अपरिचित जानकर भूँकने लगते थे। ये लोग या तो जोलाहे होते थे, या बिसाती। उनकी पीठपर सूत या बिसातेके वस्तुओंकी गठरी होती थी, जिसके बोझसे वे झुके हुए चलते थे।

गत शताब्दीके आरम्भमें सुखदास नामका जोलाहा एक पत्थरके मकानमें अपना काम किया करता था, जो लालपुरमें स्थित था। उसके करघे और चरखेमेंसे इस प्रकार भनभनाती हुई ध्वनि निकलती थी कि गाँवके बालक अपने रोचक खेलोंको छोड़कर उसके मकानकी खिड़कियोंमेंसे यह कौतुक देखा करते थे। वे चरखेके भिन्न भिन्न प्रकारके स्वर और फि .योंको देखकर आश्चर्य्य करते थे। कभी कभी जब सु दास टूटे हुए धागोंको जोड़ने या और कोई दोष दूर क के लिये अपने स्थानसे उठता और बालकोंको खिड़की े झाँकते हुए देखता तो उनको भय दिखानेके लिये की ओर आँखें निकाल कर दौड़ता था। बेचारे बा डरके मारे चम्पत हो जाते थे।

ग्रामके बालकोंने अपने पि नातासे सुना था कि सुखदास चाहे तो गठिया अ. ओषधि कर सकता है। वह भूत-प्रेत आदिसे भी प बतलाया जाता था।

उस समयके कृषकोंके, कुछ इसी प्रकारके विचार थे और होने भी चाहिये थे, क्योंकि वे संसारकी बातोंसे कोरे थे। उनके समीप दुःख और कष्टका क्षेत्र आनन्द और सुखके क्षेत्रसे अधिक विस्तीर्ण था। उनके मन और विचार उन बातोंकी कल्पना भी न कर सकते थे, जो इच्छाओं और आशाओंका स्रोत हैं। इसके प्रतिकूल उनके मस्तिष्क उन विचारों और श्रुतियोंसे परिपूर्ण थे, जो भयकारी होते थे।

लालपुर देशके उस भागमें स्थित था, जहाँकी भूमि सुरम्य थी और सड़कसे एक घंटेके मार्गपर होनेके कारण वहाँ धर्म और भक्तिकी चर्चा भी रहती थी। सुखदास इस गाँवमें १५ वर्ष पूर्व आकर बसा था। यद्यपि नागरिकोंके समीप इस मनुष्यमें कोई अद्भुत बात न थी तथापि ग्रामीणोके विचारसे वह एक अद्भुत मनुष्य था। उसके रहन-सहनका ढंग कुछ निरालासा था। न तो किसीके घर जाता और न किसीको अपने घर बुलाता। वह तम्बाकू या मदिरा आदि भी न पीता था। वह केवल अपने जीविकासम्बन्धी कार्य्योंके वश तो दूसरोंके पास जाता, बाकी समय अपने व्यवसाय और विश्राममें व्यतीत करता था।

सुखदास मध्यम ऊँचाईका मनुष्य था। उसका रंग पीला था, उसके नेत्र अद्भुत प्रकारके थे, मानो किसी मुर्देकी आँखें हों। उसने अपनी माँसि जड़ी-बूटियोंका

ज्ञान प्राप्त किया था और तन्त्र मन्त्र भी वह जानता था। झाड़ फूँक कर रोगियोंको अच्छा कर देता था। इन्हीं बातोंके कारण वह अद्भुत प्रकृति रखते हुए भी लोगोंके अत्याचारसे सुरक्षित रह सकता था।

पर १५ वर्ष पहले जब वह मधुबन नामके गाँवमें रहता था, उसका जीवन ऐसा शुष्क और आनन्दविहीन न था। वहाँ उसका आदर किया जाता था और लोग उसे धार्मिक मनुष्य समझते थे। उसी गाँवमें एक बेर कीर्तनके समय वह शिवालेमें अचेत हो गया था। तबसे उस पर लोगोंकी श्रद्धा और भी हो गई थी। वहाँ उसके मित्रोंमें गोपाल नामका एक युवक था। सुखदास बहुधा उसके साथ आमोद प्रमोद किया करता था। वे दोनों सदैव एक साथ रहते और एक साथ भोजन करते थे। गोपाल भी सच्चरित्र समझा जाता था और रामायण आदि पढ़ सकता था, जिसके कारण वह शिवालेके पुजारीको भी तुच्छ समझता था। दोनों मित्रोंमें प्रायः मुक्ति और उसके साधनके विषयमें प्रायः वार्ता हुआ करती थी। गोपालहीके उद्योगसे सुखदासका विवाह भी निश्चित हो गया था और उसकी तय्यारियाँ की जा रही थीं। उन्हीं दिनों गाँवके मन्दिरके महन्त रामदास बीमार हो गये। गाँवके लोग उनको पूज्य समझते थे, अतएव बारीबारीसे उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगे। शनैः शनैः

सुखदासकी बारी भी आई। एक रात्रि जब कि वह अकेले महन्तजीके पास था तो उनका देहान्त हो गया। उस दिन गोपालकी बारी भी थी, पर वह एक घंटेके लिये भी न आया। प्रातःकाल जब गाँवमें यह समाचार फैला तो लोग जमा होकर महन्तजीकी दाह-क्रियाका प्रबन्ध करने लगे। वहाँसे लौटने पर सुखदास गोपालके पास जानेहीवाला था कि मन्दिरके पुजारीजी उसे लिये हुए स्वयं आगये और बोले—आज कीर्तनके समय अवश्य आना। सुखदासने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तरमें कहा कि कारण वहीं ज्ञात हो जायगा। यह कहकर वे गोपालके साथ चले गये।

सुखदास जब नियमित समयपर मन्दिरमें पहुँचा तो गाँवके कितने ही सज्जन जमा थे। पुजारीने एक चाकू निकाल कर सुखदासको दिखाया और पूछा "यह चाकू तुम कहाँ भूल गये थे?"

सुखदासने उत्तर दिया, "यह तो मेरे जेबमें था।"

पुजारी—"तो मेरे पास कैसे आ गया?"

सुखदास—"यह मैं नहीं बतला सकता।"

पुजारी—"तुम अपना दोष व्यर्थ छिपाते हो। यह चाकू महन्तजीके बिस्तरके नीचे मिला है, जहाँ मन्दिरकी आमदनी एक थैलीमें भरी हुई रक्खी थी। किसीने वह

थैली वहाँसे उड़ा दी और उड़ानेवाला इस चाकूके मा-लिकके सिवाय और कौन हो सकता है ?"

सुखदास कई मिनट तक चुपचाप खड़ा रहा। अंतमें उसने कहा—"मैं निर्दोष हूँ। मुझे न तो यह मालूम है कि मेरा चाकू वहाँ कैसे पहुँच गया और न यह जानता हूँ कि रुपये किसने लिये। तुम मेरी और मेरे घरकी तलाशी ले लो। तुम्हें वहाँ केवल ५०) रक्खे हुए मिलेंगे जो मैंने बचाकर रख छोड़े हैं। वे वहाँ ६ महिनेसे रक्खे हुए हैं और यह बात गोपाल भी जानता है।"

गोपाल यह सुनकर कुछ भुनभुनाने लगा जिसका आशय यह था कि मैं किसीके घरका हाल क्या जानूँ। पर पुजारीजीने जोर देकर कहा—"सक्खू! मेरे पास पूरा प्रमाण है। रुपया गत रातको लोप हो गया। रातको तुमही महंतजीके पास थे। गोपाल वहाँ अस्वस्थ हो जानेके कारण नहीं गया। इसे तुम भी स्वीकार करते हो। अब तुम्हीं बताओ किस पर संदेह किया जाय ?"

सुखदास—"सम्भव है मैं सो गया हूँ, या मुझे मूर्च्छा आगई होगी जैसा कि तुम देख चुके हो। कदाचित् उसी समय कोई चोर आगया होगा। मैं निर्दोष हूँ, तुम अभी चलकर मेरे घरकी तलाशी ले लो, क्यों कि अभी तक मैं घरसे कहीं गया भी नहीं।"

निदान सुखदासके घरकी तलाशी ली गई और गोपालने महंतजीकी खाली थैली सुखदासके दरवाजेके पीछे टँगी हुई पाई। उसने कहा "मित्र, अपराध स्वीकार कर लो, झूठ बोलनेसे क्या लाभ ?"

सुखदासने गोपालकी ओर तुच्छ दृष्टिसे देखकर कहा "तुम मुझे नौ वर्षोंसे जानते हो। तुमने मुझे कभी झूठ बोलते देखा है ? मैं झूठसे घृणा करता हूँ। ईश्वर मुझे अवश्य निर्दोष सिद्ध करेंगे।"

गोपाल—"मुझे क्या खबर कि तुम अपने मनमें क्या क्या गुप्त संकल्प करते रहते हो और उसमें पिशाचको स्थान देते हो।"

यह बात सुनकर सुखदासका चेहरा तमतमा गया। वह कुछ कहनेहीको था कि किसी आन्तरिक दुःखके कारण रुक गया। उसके चेहरेका रंग उड़ गया और होंठ काँपने लगे। अन्तमें उसने गोपालकी ओर देखकर कहा, "अब मुझे याद आ रहा है कि जब मैं महन्तजीके पास गया तो मेरे जेबमें चाकू नहीं था।"

गोपाल—"मेरी समझमें नहीं आता कि तुम क्या कहते हो। इस छल कपटसे अब काम न चलेगा। सुखदासको कई आदमियोंने चारों तरफसे घेर लिया और वे भिन्न भिन्न प्रश्न पूछने लगे। पर उसने किसीको उत्तर न

दिया। केवल यही कहता रहा कि मैं कुछ नहीं कह सकता। ईश्वर मुझे निर्दोष सिद्ध करेगा।

कानूनका आश्रय लेना उस मन्दिरके नियमके विरुद्ध था। इस अपराधका जो बड़ेसे बड़ा दण्ड दिया जा सकता था वह यह था कि सिर्फ जातसे हुक्का पानी बंद कर दिया जाय। और यही किया गया। कुछ लोगोंने चोरका पता लगानेके लिये चिट्ठियाँ डालीं और संयोग-वश उसमें भी सुखदासहीका नाम निकला। अब उसके चोर होनेमें कोई सन्देह न रहा। पुजारीने उसे बिराद-रीमें मिलनेका अब भी एक अवसर दिया। इस शर्तपर कि रुपये वापस दे दे और फिर चोरी न करनेका प्रण करे। पर सुखदासने इसका भी कुछ उत्तर न दिया।

इसके पश्चात् सुखदास निराश होकर घर चला आया और अपने मनमें इस दुर्घटनापर आलोचनायें करने लगा। मैंने पिछली बार जब एक धागा काटनेके लिये चाकू दिया था, तबसे फिर उसे मैंने जेबमें नहीं रक्खा। वह अवश्य गोपालहीके पास था। गोपालने मेरे साथ विश्वासघात किया। इस संसार पर न्यायकारी ईश्वर शासन नहीं करता, बल्कि वह अन्यायी है जो निर्दोषियोंको दोषी सिद्ध करता है। वह दिन भर उदास बैठा रहा। दूसरे दिन इस चिन्ताको दूर करनेके

लिये उसने काम करना शुरू किया, पर उसका जी बिल्कुल न लगा। वह एक मास तक उस गाँवमें और रहा। बिल्कुल इसी तरह जैसे कैदी कारावास करे। इसके बाद वह वहाँसे किसी स्थानपर चला गया।

दूसरा अध्याय

मधुवनसे निकल कर वह जिस गाँवमें आया उस गाँवका नाम लालपुर था। यद्यपि उससे कोई परिचित न था, पर जमीदारकी दयालुतासे उसे छोटासा मकान मिल गया और वहाँ वह एकान्तवासी बनकर जीवन व्यतीत करने लगा। अधिकतर वह अपना समय करघे पर लगाता था। अपने हाथोंसे भोजन बनाता, अपना पानी आप भरता और अपने कपड़े भी आप धो लेता। वह लोगोंसे विलग रहने लगा। बीते हुए समयको भूलकर भी स्मरण न करता। भविष्यमें भी उसे कुछ आशा न थी। उस मिथ्या दोषारोपणने उसे धर्म तथा संसार दोनोंहीसे विमुख कर दिया।

वह अपने काममें अत्यन्त चतुर था। धीरे धीरे उसके कपड़ोंकी माँग बढ़ने लगी। उस गाँवमें सुभागी नामकी एक ठकुराइन रहती थी। उसने सुखदाससे एक ओढ़नी बनवाई और उसे मजूरीमें एक मोहर दी। परन्तु उसके लिये यह अशर्फी किस कामकी थी, जब कि उसका हृदय अविश्वाससे पीड़ित हो रहा था।

एक दिन जब कि सुखदास अपने जूतोंकी मरम्मत करानेके लिये मोचीके यहाँ गया तो देखा कि उसकी स्त्री उसके पास बैठी हुई है। उसकी सूरतसे जलोदर रोगके चिह्न प्रकट होते थे। उस समय उसे अपनी माताका स्मरण हो आया, जिसका देहान्त इसी रोगसे हुआ था। अतः उसे दुखिनी पर दया आ गई। उसने एक ओषधि बना कर उसे दी और संयोगवश उसे इससे लाभ हुआ। उस बेचारीको वैद्यों और हकीमोंकी ओषधिसे कोई लाभ न हुआ था। जब उसे सुखदासकी ओषधिसे लाभ हुआ तो लोगोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वैद्योंकी ओषधिसे स्वस्थ होना एक स्वाभाविक और साधारण बात थी, परन्तु एक जोलाहेकी ओषधिसे स्वास्थ्य लाभ करना आश्चर्य्यजनक था। उस गाँवमें यह पहला ही अवसर था कि एक जोलाहेकी ओषधिसे असाध्य रोग जाता रहा। तबसे सुखदासको लोग एक अद्भुत मनुष्य समझने लगे।

इस घटनासे सुखदास चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। मातायें आतीं। कोई बच्चेकी खाँसीके निवारणार्थ यन्त्र माँगती। कोई दूध उतरनेका टोटका पूँछती। कोई मनुष्य गठियाकी ओषधि माँगता और कोई पुट्ठेके दर्दकी। यदि वह दवा देनेमें कुछ संकोच करता तो उसे रुपयेका लोभ दिया जाता। पर सुखदास रुपयेका दास नहीं था और कभी भी नहीं हुआ था। पर जब रोगियोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी तो सुखदासको इन लोगोंसे कष्ट होने लगा। अन्तमें उसने एक दिन साफ कह दिया कि मेरे पास कोई रोगी न आवे। मुझे न तो कोई सिद्धि है और न जादू टोने आते हैं। इसका फल यह हुआ कि सारे गाँवके लोग सुखदाससे अप्रसन्न हो गये। यदि किसी उच्च जातिके मनुष्यने यह बात कही होती तो वह क्षम्य समझा जाता, पर एक जोलाहेको इतना घमंड हो, यह रोगियोंकी सहनशक्तिसे भी बाहर था। लोग इसकी सूरतसे चिढ़ने लगे।

सुखदासको गाँववालोंकी इस उपेक्षासे लेश मात्र भी खेद न हुआ। वह अपने काममें तन्मय हो गया। प्रति दिन १६ घंटे परिश्रम करता। रूखा और साधारण भोजन करता। उसे रुपये जमा करनेकी चाट पड़ गई। वह हर दम इसी चिन्तामें रहता कि किसी तरह मोहरोंकी संख्या बढ़ जाय। यदि इस मासमें ५ मोहरें हैं

तो दूसरेमें बीस और फिर तीस हो जायँ। इसी क्रमसे उसकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। काम करते करते भी उसे अपनी सम्पत्तिका ध्यान आ जाता था। कामसे छुट्टी पाते ही वह हर रात्रिको वह बर्तन निकालता, जिसमें अशर्फियाँ रक्खी हुई थीं, और उन्हें निकाल कर गिनता। इस काममें उसे असीम आनन्द और सन्तोष होता था। मानों वह द्रव्यका उपासक था।

गिननेके बाद उन अशर्फियोंको एक थैलीमें बन्द करके एक गढ़हेमें रख देता था और ऊपरसे बालू फैला देता था। उसे चोर और डाकुओंका डर न था। क्योंकि उस समयके लोग ईमानदार होते थे।

प्रतिवर्ष सुखदासका धन बढ़ता गया और बर्तन अ-शर्फियोंसे भरता गया। उसके जीवनके अब केवल दो अवलम्ब थे। एक कपड़े बुनना, दूसरा धन-सञ्चय। वह कठिन परिश्रम करता और धन सञ्चय करनेमें इस प्रकार लिप्त रहता, मानो यही इसके जीवनकी महत्त्वाकांक्षा है। इस निरन्तर परिश्रमसे वह दुबला हो गया। ४० वर्ष ही-की अवस्थामें उसकी कमर झुक गई, रंग पीला पड़ गया और आँखोंसे कम दीखने लगा। अतएव गाँवके बालक उसे बूढ़ा सुखदास कहने लगे।

इस सांसारिक विरक्तिके होनेपर भी सुखदासमें प्रेमका चिह्न शेष था, जो इस घटनासे विदित होता है। जबसे वह

लालपुर आया था, तभीसे उसके पास एक जलका घड़ा था, जिसे वह बहुत चाहता था। स्वयं कुएँसे जल लाता और नित्य घड़ेको उसके नियमित स्थानपर रख देता। एक दिन जब वह घड़ा भरकर लौट रहा था, तो उसने ठोकर खाई, घड़ा गिरा, और एक पत्थरसे लग कर टुकड़े टुकड़े हो गया। सुखदासको बहुत खेद हुआ। यद्यपि फूटे घड़ेसे कोई काम न निकल सकता था, तथापि वह टुकड़ोंको ले आया और उसने उसे जोड़ कर निश्चित स्थानपर रख दिया। फूटे घड़ेको देखनेसे उसके चित्तको शान्ति होती थी!

सुखदासके जीवनके पन्द्रह वर्ष इसी भाँति लालपुरमें बीते। दिन भर काम करता, रातको भी काम करता। कच्चा पक्का भोजन बनाकर खाता, तब अशर्फियों और रुपयोंको गिनता। इसके बाद शयन करता। वह केवल चाँदीके सिक्कोंको व्यय करता था, अशर्फियोंको कभी न भुनाता था। अशर्फियोंको गिनते समय उसके नेत्रोंसे द्रव्य-प्रेमकी ज्योति निकलती थी। जब धन अधिक बढ़ गया तो उसने उसे चमड़ेकी थैलीमें रखना शुरू किया, पर उसका धनावलोकन और निरीक्षण पूर्ववत् जारी रहा। उसे द्रव्यसे इतना प्रेम हो गया था कि रातको सोते समय भी वह रुपयों और अशर्फियोंका ही स्वप्न देखता! यद्यपि उसके पास बहुत धन जमा हो गया था, पर गाँववालोंको इसकी जरा भी खबर न थी।

तीसरा अध्याय।

लालपुरमें सबसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष ठाकुर नरेशसिंह थे। वे एक विशाल भवनमें रहते थे। यद्यपि उनके पास भूमि बहुत थोड़ी थी और असामी भी अधिक न थे, पर समय पड़नेपर वे उनके यहाँ इस प्रकारसे दोहाई मचाने जाते, मानो वे उनके राजा हैं। जनताने उन्हें राजाकी पदवी प्रदान कर दी थी। लालपुरमें उस समय तक कबीरके उपदेशोंका प्रभाव नहीं पड़ा था। वहाँके निवासी आनन्दसे जीवन व्यतीत करते थे।

ठाकुर नरेशसिंह एक तो स्वयं फिजूलखर्च आदमी थे,

दूसरे उनकी स्त्रीका देहान्त हो चुका था। इसलिये उनके घरमें बहुत कुछ कुप्रबन्ध था। उनके दो लड़के थे। बड़ा लड़का महीपसिंह एक सच्चरित्र युवक था, पर आलस्यमें पड़े रहनेके कारण वह घरके कामोंमें अपने पिताकी सहायता न करता था। दूसरा पुत्र दिलीपसिंह शराबी और आवारा था। वह कभी कभी अपने बड़े भाईसे रुपया उधार ले लिया करता, पर देना न जानता था। और यद्यपि महीपसिंहको कई बार इसका अनुभव हो चुका था, पर वह सरलस्वभाव होनेके कारण दिलीपसिंहकी बातोंमें आ जाता था।

एक दिन संध्या समय महीपसिंहने दिलीपको बुलाकर उन रुपयोंका तकाजा किया, जो उसने एक असामीसे वसूल करके दिये थे। दिलीप उस वक्त शराबके नशेमें था। अकड़ता हुआ आया और गर्वसे बोला, "आपने मुझे क्यों याद किया?"

महीप—"पिताजीको रूपयोंकी आज कल विशेष आवश्यकता है। करीमका लगान, जो मैंने तुमको दिया है, चटपट दे दो। नहीं तो मैं पिताजीसे साफ कह दूँगा कि मैंने रुपये तुम्हें दिये हैं। मैं तुम्हारे पीछे उनकी अप्रसन्नता नहीं सहना चाहता।"

दिलीप—"रुपयोंका प्रबन्ध तो आप ज्यादा आसानीसे कर सकते हैं।"

महीप—"यदि मैं प्रबन्ध कर सकता, तो तुम्हें कष्ट न देता। और मैं प्रबन्ध कर भी सकूँ, तो भी तुम्हें रुपये देने चाहिये।"

दिलीप—"चाहिये तो, पर आवें कहाँसे?"

महीप—"लेनेके समय तुम्हें स्वयं इस प्रश्नका उत्तर सोच लेना चाहिये था।"

दिलीप—"इतनी ही समझ होती, तो सबकी फटकार क्यों सहता? आपने जहाँ मुझपर इतनी दया की है, वहाँ इतनी कृपा और कीजिये कि किसीसे ऋण लेकर पिताजी-को उनके रुपये दे दीजिये। हमारा और आपका लेखा फिर होता रहेगा।"

महीपने सोचकर कहा—"एक बात हो सकती है। तुम मेरा घोड़ा बेच लाओ। इसके सिवाय मुझे अन्य कोई उपाय नहीं सूझता। पर यह समझ लो कि मेरा और तुम्हारा यह अन्तिम व्योहार है। अब मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूँगा।"

दिलीप—"इतनी कठिन प्रतिज्ञा न कीजिये, पर आपका घोड़ा मैं बेच लानेके लिये तैय्यार हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि एक रुपया भी शराब पीनेमें न खर्च करूँगा।"

यद्यपि महीप इस घोड़ेको बहुत चाहता था, पर इस समय विवश होकर उसे बेचना पड़ा। दिलीप एक कु-

चरित्र युवक था। रात दिन जुये, मदिरापान तथा कुचेष्टाओंमें आसक्त रहता था। महीप उसे अपना घोड़ा देते हुए डरता था कि कहीं वह उसे बेचकर उसके रुपये न उड़ा जाय और चाहे इतना साहस न कर सके, पर इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं था कि पूरा मूल्य मेरे हाथोंमें न आयेगा। वह स्वयं दस कोस तक घोड़ेकी पीठपर बैठनेका कष्ट सहनेमें असमर्थ था। आलस्यमय जीवनने परिश्रमसे उसके मनमें घृणा पैदा कर दी थी। यहाँ तक कि घोड़ेके मूल्यके उड़ जाने तथा असावधानीसे दौड़ानेके कारण उसके प्राणान्त हो जानेकी शंकाने भी उसको उत्तेजित न किया।

प्रातः होते ही दिलीप घोड़े पर सवार होकर बाजार चला। जब वह उस मकानके निकट पहुँचा, जिसमें सुखदास रहता था, तो उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह मूर्ख वृद्ध जोलाहा अवश्य बहुत धनी होगा। निःसन्देह उसका धन किसी जगह गड़ा होगा। आश्चर्य है कि मैंने महीपको यह बात कभी न सुझाई कि वह इस जोलाहेसे विश्वास पर ऋण लेनेका यत्न करे। इस विचारके उठते ही उसने घोड़ेकी बागडोर घरकी ओर मोड़ दी। उसे विश्वास था कि महीप इस सम्मतिको सहर्ष स्वीकार कर लेगा, पर न जाने उसके दिलमें यकायक क्या आया कि वह फिर पलट कर मार्ग

पर चला आया और घोड़ेको दौड़ाने लगा। वह रूप-वान् था और घोड़ेकी सवारीमें बहुत चतुर था। तेज घोड़े पर सवार होनेमें उसे बड़ा आनन्द मिलता था। जब राहगीर लोग खड़े हो होकर उसे आश्चर्यसे देखते, तो वह घोड़ेको और तेज कर देता था। जब वह बाजार पहुँचा, तो सैकड़ों आँखें उसकी ओर उठ गई। वहाँ पर सैकड़ों घोड़े मौजूद थे, पर इस शानका एक भी घोड़ा न था। वहाँके सबसे बड़े व्यापारीका नाम साहबखाँ था। वह उसे देखते ही समीप आया और उसका स्वागत करके बोला—"आज तो आप अपने भाई साहबके घोड़े पर सवार हो कर आये हैं। यह नई बात है।"

दिलीप—"अब तो यह घोड़ा मेरा है, मैंने उनसे झपट लिया।"

साहब खाँ—"झपट कैसे लिया?"

दिलीप—"ऐसा ही मेरे उनके बीच कुछ हिसाब था, जो एक घोड़ा लेकर तय हो गया।"

यद्यपि दिलीपने यह नहीं कहा कि मैं घोड़ेको बेचना चाहता हूँ, पर साहब खाँ ताड़ गया कि वह उसे बेचने-हीके लिये लाया है। उसने दिलीपसे कहा,—"यदि आप इसे बेचना चाहें, तो आपको इसके अच्छे दाम मिल सकते हैं।"

दिलीप—"मुझे बेचनेकी इच्छा नहीं, मुझे इसके आज ही २००) मिल रहे थे।"

साहब खाँ—"यह मत कहो, मैंने आज तक कोई ऐसा मनुष्य न देखा जो ड्योढ़े दाम पाकर घोड़ेको बेच न डाले। दाम तो इसके वही ३००) होंगे, पर आपको पान खानेके लिये कुछ और मिल जायँगे।"

साहब खाँने यह कहा ही था कि उसका एक मित्र घोड़े पर सवार हो गया और उसे दौड़ाकर उसकी चाल देखने लगा। अन्तमें साढ़े तीन सौ रुपये पर सौदा तै हो गया, पर शर्त यह थी कि दिलीप घोड़ेको साहबखाँके अस्तबलमें पहुँचा दे। दिलीप राजी हो गया। वह उसी वक्त उस अस्तबलकी तरफ चला, जो वहाँसे ३ मील पर था, ताकि शाम होते होते वह रुपयेसे जेब गर्म करके किरायेके घोड़े पर सवार हो कर घर पहुँच जाय। वह एक मील आया होगा कि उसे घुड़-दौड़का मैदान दिखाई दिया। वहाँ घोड़ोंके कूदनेके लिये टट्टियाँ लगी हुई थीं। दिलीप उमंगमें आकर टट्टियाँ कुदाने लगा, पर दुर्भाग्यवश कई टट्टियाँ कूदनेके पश्चात् घोड़ा एक टट्टी पर गिर पड़ा। टट्टीकी एक लकड़ी उसके कण्ठमें घुस गई, दिलीप भी गिरा, पर उसे थोड़ी चोट लगी। घोड़ा उसी दम तड़प तड़प कर मर गया।

दिलीप उन मनुष्योंमें था, जो किसी हानि पर केवल कुछ ही मिनट तक खेद करते हैं। वह पृथ्वीसे उठा। पहले अपनी देख भाल की कि कहीं उसे चोट तो नहीं

आई। उसे घोड़ेके मरनेका इतना दुःख न हुआ, जि-
तनी यह चिन्ता कि घर क्यों कर पहुँचूँ। उसे महीपके
क्रोधका भय भी अवश्य था, पर उसने सोचा, जब मैं
उन्हें सुखदाससे ऋण लेनेकी बात सुना दूँगा, तो वे
मुझे क्षमा कर देंगे।

वह मनमें सुखदाससे रुपये लेनेके विचारको आशा-
रूपमें परिणत करता जाता था। यहाँ तक कि वह सा-
हूकारोंके अस्तबल तक पहुँचा और उसने एक घोड़ा किराये
पर लेना चाहा, परन्तु जिस मनुष्यने अभी अभी एक घोड़ेकी
जान ले ली हो, उसे कौन अपना घोड़ा भाड़े पर देता?
दिलीपको विवश होकर लालपुर तक पैदल आना पड़ा।
उस समय दिनके ४ बजे थे, आकाशमें बादल घिरने
लगे थे। उसने बूट कस, हण्टर हाथमें लिया और वह
तेजीके साथ पक्की सड़क पर चलने लगा।

बादल अधिक घिरते गये, दिलीप भी डग बढ़ाता
हुआ लालपुरकी सीमा तक आया। उस समय बादल
इतने घने हो गये कि हाथको हाथ नहीं सूझता था।
इसी दशामें जब कि वह सुखदासके घरके पास पहुँचा,
तो उसके दिलमें उससे वार्तालाप करनेका विचार उत्पन्न
हुआ। वह केवल रुपयेके विषयमें उसका मन लेना
नहीं चाहता था, बल्कि घिरते हुए बादलोंसे रक्षा भी
चाहता था। दरवाजेके दराजसे निकलता हुआ प्रकाश

उस अन्धकारमें उसे बहुत आशाजनक मालूम हुआ। वह उस घरकी ओर चला। उसे आशा थी कि सुखदासके यहाँसे एक लालटेन अवश्य मिल जायगी, जिससे वह अपने घर तक पहुँच सकेगा, क्योंकि उसका मकान अब भी कोई पौन मीलकी दूरी पर था। वह दो ही चार पग चला था कि जोरसे वर्षा होने लगी। तब वह दौड़ता हुआ सुखदासके दरवाजे पर जा पहुँचा और उसे उच्च स्वरसे पुकारने लगा, पर भीतरसे कोई उत्तर न आया। इस पर उसने और जोरसे पुकारना शुरू किया, पर फिर भी उत्तर न मिला। तब उसने जोरसे दरवाजे पर धक्का मारा। द्वार खुल गया और दिलीपने अन्दर प्रवेश किया, पर देखा तो घर सूना था। सुखदासका कहीं पता नहीं। चूल्हेमें आग जल रही थी और उस पर एक बटुली रक्खी हुई थी, जिसका बुदबुद शब्द उस सन्नाटेको भंग कर रहा था। दिलीपने सोचा कि कदाचित् सुखदास कोई आवश्यक वस्तु लानेके लिये बाहर गया है। उस समय यकायक उसके दिलमें यह ख्याल पैदा हुआ कि सुखदासके रुपये कहाँ रक्खे हैं। इस ख्यालके आते ही और सारे विचार उसके दिलसे दूर हो गये। ऐसे मकानमें केवल तीन ही जगहें ऐसी थीं, जहाँ रुपया रक्खा जा सकता था। छप्पर, चारपाई, या कोई बिल। सुखदासके मकानमें कोई छप्पर था ही नहीं, अतः दिलीपने बिछौने

और पलंगको टटोलना आरम्भ किया। साथ ही भूमिपर दृष्टि दौड़ाई। पर कहीं कोई ऐसी जगह न दिखाई दी, जहाँ रुपये रखनेके गुप्त स्थानका सन्देह हो सकता। केवल एक जगह कुछ रेत पड़ी हुई थी जिसपर अँगुलियोंके चिह्न बने थे।

इस स्थानको देखते ही दिलीप चौंक पड़ा। उसे भावना हुई कि रुपया यहीं रक्खा होगा। वह वहाँ लपक कर पहुँचा और रेतको हटा कर देखा, तो ईंटें रक्खी हुई थीं। उसने शीघ्रतासे उन ईंटोंको निकाल दिया तो एक बड़ी बिल दिखाई दी। दिलीपने बिलमें हाथ डालकर इधर उधर टटोला, तो उसे एक चमड़ेकी थैली मिल गई। उसने उसे बाहर निकाल लिया। उसके बोझसे उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि उसमें रुपये और अशर्फियोंके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। उसने थैलीको एक ओर रखकर ईंटोंको भीतर रक्खा और ऊपर रेत फैलाकर पूर्ववत् कर दिया। उसे यहाँ कुल पाँच मिनट लगे थे, पर यह पाँच मिनट कई घंटोंसे अधिक मालूम हुए।

दिलीप मारे भयके काँप रहा था और हृदय वक्षस्थलमें हाथों उछल रहा था। वह चमड़ेकी थैलीको लेकर खड़ा हुआ और बाहर निकलते ही उसने द्वार बन्द कर दिया कि भीतरका प्रकाश बाहर न आ सके। इस थैलीको

लिये हुए वह आगे बढ़ा। उस समय अँधेरा भी बढ़ गया था और मूसलधार पानी बरस रहा था। सुखदासके घरमें जानेसे पहले उसे यह अँधेरा बुरा मालूम होता था, पर इस समय बहुत ही भला लगा। क्योंकि वह उसके पापको छिपा सकता था।

चौथा अध्याय।

जब दिलीप यहाँसे चला, तो सुखदास उससे १०० पगकी दूरी पर था। वह पीठ पर एक बोरा लादे और हाथमें लालटेन लिये गाँवसे आ रहा था। यद्यपि वह थका मादा था, तो भी गर्म गर्म भोजनकी आशा उसे प्रसन्नचित्त बनाये हुए थी। आज भोजनकी सामग्री उसे एक ग्राहकने भेट की थी, इस लिये वह रूखा न था। सुखदास नियमानुसार रातको भोजन इच्छानुसार भरपेट करता था। क्यों कि उस समय उसकी सम्पत्ति उसकी आँखोंके सामने रहती थी।

सुखदास घरसे चलते समय ताला [illegible] था। उसे यह शंका ही न थी कि इस वर्षामें कोई चोर

उस घरमें आ सकता है। क्योंकि गत १५ वर्षोंमें एक बार भी उसे इस प्रकारका खटका न हुआ था। द्वारपर पहुँच कर उसने केवाड़ खोले और अन्दर गया। सब चीजें ज्योंकी त्यों मिलीं। कोई परिवर्तन न दिखाई पड़ा। अग्नि प्रज्वलित थी, खाना पक रहा था और दीपक प्रकाशमान था। उसने बोरा एक ओर रक्खा, लालटेन दूसरी ओर, और पगड़ी उतार कर खूँटी पर टाँग दी। निश्चिन्त हो कर इधर उधर टहलने लगा, जिससे वे पदचिह्न मिट गये, जो दिलीप रेत पर छोड़ गया था। तब उसने पैर धोये और चौकेमें बैठ कर उसने खिचड़ीकी बटुली अपने सामने रख ली।

यदि कोई मनुष्य उसके रूपको अग्निके प्रकाशमें देखता तो अवश्य डर जाता। उसकी गोल, तीव्र आँखें, बिखरे हुए बाल, पीला चेहरा, दुर्बल शरीर उस प्रकाशमें और भी भयकारी हो रहे थे। यद्यपि उसे लोग सन्देहकी दृष्टिसे देखते थे, पर वास्तवमें वह नितान्त सरल मनुष्य था। उसके सीधे सादे हृदयपटल पर कपटका कोई चिह्न न था। चूँकि विश्वासका प्रकाश उसके आत्मामें लोप हो चुका था, प्रेममें उसे असफलता हो चुकी थी अतः वह संसारकी सारी बातोंको छोड़कर केवल परिश्रम करने और रुपये जमा करनेमें लिप्त रहता था। मानो यही दो काम उसके जीवनके दो मुख्य उद्देश्य थे।

जब अग्निके पास बैठे हुए कुछ विलम्ब हुआ, तो उसने सोचा कि भोजनके बाद अपने धनका निरीक्षण करनेमें देर होगी। अतः उसने ईंटोंको हटाकर बिलमें हाथ डाला। वहाँ थैलीका पता नहीं था। उसका दिल जोरसे उछल पड़ा, परन्तु उसे यह विश्वास न हुआ कि कोई वास्तवमें अशर्फियोंको चुरा ले गया है। केवल एक शंकाका अनुभव हुआ और उस शंकाको वह दूर कर देना चाहता था। उसने अपने काँपते हुए हाथोंसे बिलको खूब टटोला कि कहीं मुझे धोखा तो नहीं हो रहा है। तब उसने बत्तीको बिलमें डाल दिया और सिरसे पैर तक काँपते हुए उसे ध्यानपूर्वक देखा, अन्तमें उसके शरीरमें ऐसी कँपकँपी हुई कि लालटेन उसके हाथसे छूट कर गिर पड़ी। उसने हाथ सिर पर रख लिया कि सावधान होकर कुछ विचार कर सके।

इस घबराहटकी दशामें उसके मनमें यह प्रश्न हुआ कि गत रात्रिको मैंने अपनी अशर्फियाँ किसी अन्य स्थान पर तो नहीं रख दीं। इस समय उसकी दशा उस डूबते हुए मनुष्यकीसी थी जो तिनकेका सहारा ढूँढ़ता हो, अथवा उस मनुष्यकीसी जो अँधेरेमें टटोल रहा हो और उसे कहींसे प्रकाश न मिलता हो। उसने मकानका कोना कोना ढूँढ़ मारा, बिस्तर उलट कर देखा, करघेमें हाथ डालकर देखा, पर अशर्फियोंका पता न

मिला। अन्तमें उसने एक बार फिर बिलमें हाथ डाला और उसे अच्छी तरह टटोला, परन्तु भयंकर सचाईसे उसे एक क्षणके लिये भी शरण न मिली।

जब कोई मनुष्य निराशाके पञ्जेमें फँस जाता है तो वह चारों ओर आशामय दृष्टि दौड़ाता है। सुखदास बड़ी कठिनतासे उठा और उसने उस चौकीको देखा जिस पर वह अपने बर्तन रक्खा करता था। तब वह मकानके दर्वाजे पर आया, फिर पिछवाड़ेकी तरफ गया और चारों तरफ आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा, पर अशर्फियाँ कहीं भी नजर न आईं। जब वह चारों तरफसे निराश हो गया तो उसने अपने सिर पर हाथ रख कर एक दीर्घ श्वास खींचा। इसके पश्चात् वह कुछ देर तक स्थिर भावसे खड़ा रहा; फिर करघेकी ओर लड़खड़ाता हुआ बढ़ा और उस स्थान पर बैठ गया, जहाँ बैठ कर काम किया करता था।

सभी प्रकारकी झूठी आशाओंके लुप्त हो जानेके बाद चोरका विचार उसके दिलमें उठने लगा और इस विचारको उसने बलपूर्वक स्थिर किया। क्योंकि यहाँ उसकी आशाओंको ठहरनेका स्थान मिल सकता था। चोर पकड़ा जा सकता था और उससे अशर्फियाँ वापस की जा सकती थीं। वह करघेसे उठ कर द्वारतक आया। ज्योंही उसने केवाड़ खोले कि वर्षाका एक झोंका उसके

मुँहपर लगा । वह सिरसे पैर तक भीग गया । इतनी देरमें उसमें विचार करनेकी शक्ति लौट आई थी । वह सोचने लगा कि चोर किस समय आया। जब मैं दिनको बाहर गया था तो मैंने केवाड़ बन्द कर दिये थे। किसी मनुष्यके पद-चिह्न द्वारके सामने न थे। संध्या समय भी सब वस्तुयें वैसी ही थीं, जैसी कि दिनमें । कोई नई बात न दिखाई दी थी । न तो घरके बाहर और न घरके भीतर । उसने फिर सोचा, यह कोई पैशाचिक लीला तो नहीं है कि जिसने जीवनमें दूसरी बार मुझे नष्ट किया । पर यहाँसे उसका विचार शीघ्र ही दूसरी ओर फिरा । लालपुरमें दुक्खी नामका एक अहीर रहता था जो एक वार चोरीका दण्ड पा चुका था । वह सुख-दासके यहाँ आया जाया करता और उसके धनके विषयमें कभी कभी हँसी किया करता था। सुखदासका सन्देह दुक्खीपर हुआ और उसे प्रबल इच्छा हुई कि उसके पास चल कर अपने रुपये वापस लूँ । वह उसे दंड देना या दिलाना न चाहता था । वह न्यायालयसे परिचित न था। वह केवल अपने रुपये चाहता था । इस लिये उसने संकल्प किया कि नरेशसिंहके पास चल कर दोहाई दे । वह नंगे सिर और मकानको खुला हुआ छोड़ कर पानीमें भीगता हुआ गाँवकी ओर भागा ! परन्तु जब मार्गमें उसका स्वास फूलने लगा तो वह धीरे धीरे चलने लगा ।

इस समय नरेशसिंहके चौपालमें गाँवके धनी मानी पुरुष बैठे हुए थे। इधर उधरकी गपशप हो रही थी। एक महाशय भूतोंकी कथा सुना रहे थे। चिलम पर चिलम भरी जाती थी और तम्बाकूकी सुगन्ध उड़ रही थी। सुखदास कुछ देर तक द्वारे पर खड़ा रहा। उसे अन्दर जानेका साहस न हुआ, पर अन्तमें वह जी कड़ा करके चौपालमें घुस गया। भूत पिशाचकी तो चर्चा हो ही रही थी, अकस्मात् सुखदास हाँफता हुआ नंगेसिर पहुँचा तो लोग चौंक पड़े। नरेशसिंहने पूछा " कहो सुखदास तुम कैसे चले?"

सुखदास,—"सरकार मैं लुट गया, मैं आप सब लोगोंके सामने दोहाई करता हूँ।"

नरेशसिंह—" दुक्खी, जरा इस जोलाहेको पकड़ तो ले। माळूम होता है कि यह सनक गया है।"

यद्यपि दुक्खी सुखदासके सम्मुख ही बैठा था, पर उसने इस आज्ञाका पालन न किया। और बोला " वह सनका नहीं है। उसकी चोरी हो गई है और कदाचित् पीटा भी गया है।"

सुखदासने कहा—" दुक्खी " और वह उसकी ओर विचित्र आँखोंसे देखने लगा।

दुक्खीने पूछा—"क्या मुझसे कुछ काम है?" सुखदासने हाथ जोड़कर अत्यन्त दीनभावसे कहा "दुक्खी, यदि तुमने

मेरे रुपये चुराये हैं, तो मुझे दे दो, मैं तुमसे कुछ न बोलूँगा। मैं पुलीसमें भी न लिखाऊँगा, केवल मेरे रुपये लौटा दो। एक अशर्फी भी तुम्हें भेंट कर दूँगा।"

दुक्खीके तेवरोंपर बल पड़ गये। उसने सरोष होकर कहा—"मैंने तेरे रुपये चुराये हैं ? यदि ऐसी बात फिर मुँहसे निकालेगा तो इस छड़ीसे तेरी आँखें फोड़ दूँगा।"

नरेशसिंह बोले,—"यदि तुझे कुछ कहना है, तो साव-धान हो कर क्यों नहीं कहता। तेरी बातें तो कुछ सम-झहीमें नहीं आतीं।"

कारिन्दा साहब बोले, "यह तो इस तरह चिल्ला रहा है, मानो पागल हो गया है।"

कई मनुष्योंने इसपर कहा, "हाँ, हाँ, इसे बिठाओ।"

नरेशसिंहने सुखदासको अलग एक माचेपर बिठलाया और जब वह जरा सावधान हो गया, तो उससे पूछा, "हाँ, सुक्खू बताओ, अब क्या कहते हो। तुम्हारी चोरी हो गई ?"

दुक्खी बोल उठा—"कुशल इसीमें है कि यह मुझ-पर चोरीका दोष न लगावे।"

नरेशसिंह,—"तुम अपनी जबान बन्द करो। हाँ, सुक्खू साफ साफ बतलाओ।"

सुखदासने तब अपना वृतान्त कह सुनाया। लोग उससे भाँति भाँतिके प्रश्न करने लगे। उसने बहुत धैर्य्यसे

सबके उत्तर दिये, जिससे लोगोंको उसकी चोरी हो जानेका विश्वास हुआ। नरेशसिंह बोले,—"सुक्खू! तुम्हारा रुपया चुरानेवाला दुक्खी नहीं है। तुम उसपर सन्देह न करो। वह कलसे मेरे दरवाजेसे नहीं टला।"

कारिन्दा,—"हाँ हमको किसी निरपराध मनुष्यपर दोष न लगाना चाहिये।"

यह सुनकर सुखदासको वह समय याद आया जब वह स्वयं निरपराध था और उसपर चोरीका अपराध लगाया गया था। वह माचेसे उठा और दुक्खीके पास जाकर अत्यन्त दीनतासे बोला, "दुक्खी! मुझे क्षमा करो। मुझसे बड़ी भूल हुई। मैंने तुम्हारा नाम केवल इस लिये लिया था कि तुम बहुधा मेरे घर आया करते हो। अब मैं तुमको दोषी नहीं ठहराता।"

नरेशसिंह,—"तुम्हारी थैलीमें कितने रुपये थे?"

सुखदास,—"कुल २७० अशर्फियाँ थीं, मैंने कल शामको गिनकर रक्खी थीं।"

कारिन्दा,—"इतने रुपये तो बहुत भारी नहीं होते, इन्हें एक मनुष्य सरलतासे ले जा सकता है। रही यह बात कि घरमें किसीका पद-चिह्न नहीं है और वह स्थान भी ज्योंका त्यों है, जहाँ तुम्हारी अशर्फियाँ रक्खी हुई थीं। यह बात समझमें नहीं आती। मेरी राय तो यह है

कि चल कर किसी ओझासे पूछना चाहिये। वह अपने मन्त्रोंसे अवश्य चोरका पता लगा लेगा।"

नरेशसिंह—"क्या व्यर्थ बातचीत कर रहे हो! चोर पकड़ना ओझाका काम नहीं है, पुलीसका काम है। सुखदासके साथ टाँडेके थानेमें जाओ और वहाँ रपट लिखाओ। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।"

यद्यपि सुखदास थानेके नामसे डरता था, पर नरेशसिंहके आग्रहसे उसे विवश होकर थाने जाना पड़ा। उसकी आशायें कोई न कोई सहारा ढूँढती थीं। नरेशसिंहके यहाँ कोई स्थान न पाकर वे थानेकी ओर फिरीं। पानी जोरसे बरस रहा था। सुखदास कारिन्दाके साथ टाँडेकी तरफ चला।

पाँचवाँ अध्याय।

महीपसिंह रातको पासके एक गाँवमें नेवता खाने गया हुआ था, सारी रात नाच गाना देखता रहा, सुबहको जब वह अपने गाँवमें आया, तो देखा कि चारों तरफ हलचल मची हुई है। पूछनेसे विदित हुआ कि सुखदासकी चोरी हो गई है। कोई उसकी अशर्फियाँ उठा ले गया है। महीप दयावान् आदमी था, उसे सुखदास पर दया आ गई। चोरीका पता लगानेमें यह भी तत्पर हो गया।

प्रातःकाल थानेदार साहब कई कानिस्टबिलोंके साथ सुखदासके घर पर आ पहुँचे और उसके भीतर और बाहर प्रत्येक वस्तुको बड़े ध्यानसे देखने लगे। फिर मनमें कुछ विचार कर उस तालाबकी ओर बढ़े, जो सुखदासके

घरके पास ही था। तालाबके किनारे वहाँ उन्हें दिया-सलाईका एक बक्स दिखाई दिया। थानेदारने लपक कर वह बक्स उठा लिया और वे उसे इस भाँति देखने लगे मानो चोरीसे उसका कोई गहरा सम्बन्ध है। गाँवके बहुतसे आदमी वहाँ जमा थे, उन सबको भी यही ख्याल हुआ। बहुत खोज पूँछ करने पर यह पता चला कि वह डिबिया एक बिसातीकी है, जो कई दिन हुए गाँवमें सौदा बेचने आया था। उसने सुखदासके घर हुक्का पिया था और उसके हाथों कई चीजें बेची थीं। थानेदार साहब अपनी बुद्धिकी तीव्रता पर फूल कर बोले, "क्या उस बिसातीके कानोंमें बालियाँ भी थीं?"

कारिन्दाने कहा—"मुझे यह तो स्मरण है कि उसके सन्दूकमें बालियाँ थीं, पर यह नहीं कह सकता कि कानोंमें थीं या नहीं।"

थानेदार—"जब बालियाँ बेचता था तो अनुमान तो यही होता है कि पहिनता भी होगा।"

गाँवमें इस बातकी जाँच की गई तो कई मनुष्योंने कहा कि बिसातीके कानोंमें बालियाँ थीं। एक सत्यवक्ता स्त्रीने कहा कि "बालियाँ बड़ी बड़ी थीं।" एक दूसरी स्त्रीने इसका समर्थन भी किया। इसके पश्चात् थानेदार साहबने उन चीजोंको इकट्ठा करना शुरू किया, जो उस बिसातीसे

गाँववालोंने मोल ली थीं। उनमें बालियाँ भी निकलीं। तात्पर्य्य यह कि थानेदार साहबको पूरी तरह विश्वास हो गया कि बिसातीहीने सुखदासकी चोरी की है। ग्राम-वासियोंका भी यही विश्वास था, पर जब सुखदाससे पूछा गया, तो उसने कहा कि "बिसाती मेरे घर आया तो अवश्य था, पर जब मैंने कहा कि मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है तो वह बाहर ही बाहर चला गया था।"

जिन लोगोंने अपने विचारमें बिसातीको पूर्णतः दोषी समझ लिया था, उन्हें सुखदासके वचनसे बड़ी ही निराशा हुई। कुछ लोग तो उसे मूर्ख और पागल कहने लगे। उस समय नट जातिके लोग बहुधा बिसातियोंका वेष धारण करके चोरी किया करते थे और चोरीके साथ हत्या भी करते थे। वह बहुधा कानोंमें बालियाँ पहिनते थे। पन्द्रह, बीस वर्ष पहिले एक बालियाँ पहिननेवाले मनुष्यको एक हत्या करनेके दोषमें फाँसी दी गई थी। इन प्रमाणोंके देखते हुए, ग्रामवासियोंको यह निश्चय करना कठिन था कि वह बिसाती सुखदासका चोर नहीं है। उनके विचारमें यह सुखदासकी भूल मालूम होती थी। यह भी प्रसिद्ध था कि नट लोग जादू करनेमें बहुत निपुण होते हैं। अतएव संभव है उस बिसातीरूपी नटने सुखदास पर कोई जादू करके उसके घरमें प्रवेश किया हो

और उसकी सम्पत्तिका पता लगाकर अवसर पाते ही उठा ले गया हो।

यद्यपि थानेदार और ग्रामवासियोंका यह पूरा विश्वास था, पर महीपसिंह इसके विरुद्ध था। उसने कहा कि "स्वयँ मैंने उस बिसातीसे एक कलम खरीदा था। वह सीधा सादा आदमी मालूम होता था और उसके कानमें बालियाँ भी न थीं।"

इसके प्रतिकूल लगभग आधे दर्जन ऐसे मनुष्य थे जो बालियोंके सम्बन्धमें थानेदारके सम्मुख इससे कहीं सबल प्रमाण पेश करने पर तैयार थे। लोगोंको सन्देह था कि महीप कहीं थानेदारके पास जाकर यह न कहे कि वे उस बिसातीकी गिरफ्तारीका वारंट रोक लें। यहाँ तक कि तीसरे दिन, जब महीप टांडेकी ओर चला, तो लोगोंको भ्रम हुआ कि वह थानेदारके पास वारंट रोकवाने जा रहा है और कई आदमी उसे रोकनेके लिये वाद-विवाद करने लगे।

यद्यपि महीपसिंहको चोरीके विषयमें विशेष उत्साह था, पर इस समय वह टांडा नहीं जा रहा था, बल्कि वह दिलीपसिंहकी खोजमें जा रहा था। उसको सन्देह हो रहा था कि कहीं दिलीप मेरे घोड़ेका मूल्य जूयेमें न हार गया हो और अब कहीं लज्जासे मुँह छिपाये बैठा हो। दिलीप कभी कभी एक एक सप्ताह तक घरसे गायब रहता

था, इस लिये उसका तीन दिनतक घरसे गायब रहना कोई चिन्ताकी बात नहीं थी। पर अबकी वह घोड़ेके साथ गायब था, इस लिये महीपको इस विषयमें बड़ी चिन्ता हो रही थी। अकस्मात् उसे मार्गमें दूरसे एक सवार दिखाई दिया। महीपने समझा कि शायद दिलीप है और मेरे ही घोड़े पर सवार है। पर समीप पहुँचने पर विदित हुआ कि वह घोड़ेका व्यापारी साहब खाँ है।

साहब खाँ बोला, "कुँअर साहेब! आपके दिलीपसिंह तो बड़े ही भाग्यवान् आदमी हैं।"

महीप—"क्यों? क्या बात है?"

साहब खाँ—"क्या अभी वे घर नहीं पहुँचे।"

महीप—"अभी नहीं। क्या हुआ? उसने मेरे घोड़ेको क्या किया?"

साहब खाँ—"मैं तो समझ गया था कि घोड़ा आपका है, पर उन्होंने तो उसे अपना बताया था।"

महीप—"उसने घोड़ेको तो कुछ हानि नहीं पहुँचाई?"

साहब खाँने मुस्कराकर कहा, "और तो कोई हानि नहीं पहुँचाई, सिर्फ उसकी गर्दन तोड़ दी।"

यह कह करके साहब खाँने सारा वृत्तान्त सुना दिया।

महीप—"यह बहुत बुरा हुआ। मुझे सन्देह था कि घोड़े पर कोई न कोई विपत्ति आवेगी, पर उस दगाबाजके झाँसेमें आ गया।"

साहब खाँ—“मेरा ख्याल है कि वह उस वक्त तक न आवेंगे, जब तक आपका गुस्सा ठंडा न हो जावे। वे कहीं बाहर नहीं, यहीं कहीं आसपास गाँवमें छिपे बैठे हैं।”

महीप—“हाँ दो चार दिनमें घूमघाम कर घर आवेगा, और उसे ठिकाना ही कहाँ है।”

साहब खाँ तो ‘आदाबअरज करके’ विदा हुआ और महीप घरकी तरफ लौटा। उसने संकल्प किया कि सारा माजरा चल कर पिताजीसे बयान कर दूँ।

नरेशसिंह लंबे चौड़े बदनके हृष्टपुष्ट आदमी थे। यद्यपि उनकी अवस्था साठ वर्षकी हो चुकी थी, पर उनके मुखकी कान्ति ज्योंकी त्यों थी। उनकी आँखें बहुत तीव्र थीं। उनके वस्त्रोंसे गवाँरपन टपकता था, तब भी उनकी बोली और रंगढंगमें कोई ऐसी बात थी, जो दिल पर उनका रोब जमा देती थी। ठाकुर साहब समझते थे कि मेरा भवन, मेरी कुलमर्य्यादा, मेरा गृह-प्रबन्ध सब उत्तम है। चूँकि वे अपनेसे धनी मनुष्योंसे सहवास न करते थे, इस लिये अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझनेमें मग्न रहते थे। अपनी वास्तविक दशाका ज्ञान उन्हें न होने पाता था।

ज्यों ही महीप उनके सामने पहुँचा, तो उन्होंने पूछा, “कैसे चले।”

महीप—"मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

नरेशसिंह मसनद लगा कर बैठ गये और बोले—"कहो क्या बात है?"

महीप—"परसों मेरे घोड़ेकी बुरी गति हो गई।"

नरेश—क्या हुआ। क्या उसकी टाँग टूट गई? मैं तो समझता था कि तुम घोड़ेकी सवारीमें निपुण हो। मैंने अपनी जिन्दगीमें कभी ऐसा नहीं किया। यदि मैं ऐसा करता भी तो दूसरा घोड़ा मोल ले सकता था। मेरे पिताकी ऐसी अवस्था थी कि वे इतनी हानिकी कुछ परवाह न करते थे। रहा मैं, सो मेरी हालत तुम देख ही रहे हो। करीम आज ही कह रहा था कि मेरे ऋणग्रस्त होनेकी चर्चा समाचारपत्रोंमें हो रही है। उस दुष्टके यहाँ भी मेरे सौ रुपये आते हैं, पर वह देनेका नाम ही नहीं लेता। यदि तुम्हारे घोड़ेकी टाँग टूट गई है, तो लंगड़े घोड़े पर सवार होना पड़ेगा।"

ठाकुर साहब ये बातें एक साथ कहते चले गये। महीपको कुछ कहनेका अवसर ही न मिला। वह बोला, "उसकी टाँग ही नहीं टूटी, वह तो जानसे गया।"

नरेशसिंह—"तो तुमने मुझसे यह बात पहले ही क्यों नहीं कही।"

महीप—"मैंने आपसे इस लिये छिपाया था कि मैं उस घोड़ेको बेचकर आपको रुपये देना चाहता था, पर अब मैं असमर्थ हूँ। दिलीप नरसों घोड़ेको बेचनेके लिये

ले गया था। उसने साहब लोगोंके हाथ उसे अच्छे दामोंपर बेचा भी था, पर घुड़दौड़के मैदानमें वह घोड़ेको टट्टियाँ कुदाने लगा। घोड़ा गिरा और मर गया। यदि यह आपत्ति न आ जाती, तो मैं परसों ही आपको सब रुपये दे देता।

"महीपसिंह, तुम क्या कह रहे हो, मेरे समझमें नहीं आता। तुम मुझे कैसे रुपये देनेवाले थे। ऐसी क्या बात हो गई कि तुम मुझसे रुपये लेनेके बदले देना चाहते हो।"

महीप—"बात यह है कि मुझसे एक अपराध हो गया है। वह यह है कि करीमने मुझे सब रुपये उसी दिन दे दिये, जिस दिन मैं उसके पास माँगने गया था। यह रुपये मैंने दिलीपकी बातोंमें आकर उसको उधार दे दिये, पर अब वह लौटानेका नाम ही नहीं लेता। मैंने भी सब्र कर लिया और इरादा किया कि अपना घोड़ा बेचकर, भेद खुलनेसे पहले ही आपके रुपये अदा कर दूँ, पर बीचहीमें यह आफत टूट पड़ी।"

अभी महीप अपनी बात समाप्त न करने पाया था कि ठाकुरका रंग क्रोधसे लाल हो गया, बोले, "हाँ खूब, तुमने रुपये दिलीपको क्यों दे दिये? क्या तुम भी उसके साथ आवारा हो गये? तुम्हारा उसके साथ इतना मेल जोल कैसे हो गया। क्या तुम भी उसी रास्तेपर चलना चाहते हो? यदि तुम बाज न आये तो मैं तुम दोनोंको घरसे बाहर निकाल दूँगा और अपनी दूसरी शादी कर

दूँगा। तुम्हें इस जाददादकी एक पाई भी न मिलेगी। आखिर तुमने दिलीपको रुपये क्यों दे दिये? इसमें कोई न कोई भेद है।"

महीप—"इसमें भेद कुछ नहीं है। केवल मुझसे भूल हो गई कि मैंने दिलीपको रुपये दे दिये। मैं आपकी एक कौड़ी भी फिजूल नहीं खर्च करता। मेरा इरादा था कि रुपया आपका अदा कर दूँ। मैंने रुपया खाया नहीं, बस वास्तविक सच्ची बात यही है।"

नरेशसिंह—"दिलीप है कहाँ? खड़े खड़े बातें क्यों बना रहे हो? जा कर उसे पकड़ क्यों नहीं लाते? मैं उससे पूछूँ कि उसने किस कामके लिये रुपये लिये हैं। अगर उसने ठीक ठीक जवाब न दिया तो उसे घरसे निकाल दूँगा। अवश्य निकाल दूँगा।"

महीप—"वह तो अभी लौट कर नहीं आया।"

नरेशसिंह—"तो क्या उसकी भी गर्दन टूट गई?"

महीप—"जी नहीं। उसके तो कहीं चोट भी नहीं आई। वह भयके मारे कहीं चला गया होगा। कुछ दिनोंमें स्वयं आजायगा।"

नरेश—"उसने कुछ बतलाया नहीं कि किस कामके लिये रुपये ले रहा है?"

महीप—"उसने मुझे कुछ नहीं बतलाया।"

नरेशसिंह—"जब तक दिलीप न आवे, इस विषयमें मुझसे बातचीत न करो।"

छठा अध्याय

टाँडे और लालपुरमें थानेदार ईसाखाँ बहुत चतुर समझा जाता था। विना साक्षीके मुकदमेकी तह तक पहुँच जाता था। यद्यपि उस दियासलाईकी डिबियाका सुखदासकी चोरीसे कुछ भी सम्बन्ध न था, पर ईसाखाँके मनमें यह बात जमी हुई थी कि यह डिबिया ही सब कुछ है। इतने चतुर होने पर भी वह ऐसे विसातीको खोजता रहा जिसका नाम तक न मालूम था। हाँ, उसके केश श्याम और घूँघरवाले थे, जो छुरी, कैंची और छोटे मोटे गहने बेचता फिरता था और कानोंमें बालियाँ पहने हुआ था। पर या तो खोजमें बहुत तत्परता न थी और या यह हुलिया किसी विशेष विसातीका नहीं, वरन् सभी बिसातियोंका था। इस लिये किसी एक विसाती पर दोषारोपण

करना कठिन था। अतएव लालपुरके लालबुझक्कड़का उत्साह ठण्डा हो गया और थानेदार साहब भी हार कर बैठ रहे।

दिलीपसिंह पर किसीको भूल कर भी सन्देह न हो सका था कि वह सुखदासके घर चोरी करेगा। यद्यपि वह आवारा था, पर चोरी करनेकी आदतका कोई परिचय न था।

चोरीके पश्चात् सुखदासके विचारोंमें एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। यद्यपि उसका करघा और घर वर्तमान थे, वह कपड़े भी बुनता था, पर वे अशर्फियाँ, जिन्हें रोज प्रति संध्याको देख कर प्रसन्न होता था, नहीं थीं। नई आमदनी उसे ढाढस न दे सकती थी, बल्कि चोरी गये धनका ध्यान दिला कर दिल पर और भी चरके लगाती थी। वह काम करनेमें बहुधा कराहने और ठंडी स्वास भरने लगा था। संध्या समय जब वह कामसे छुट्टी पाता, तो दोनों घुटनों पर दोनों कुहनियाँ टेककर और दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर बैठा रहता। उस समय वह केवल अपनी सम्पत्तिके विचारमें मग्न रहता और कभी कभी दबी हुई आहें भरता था।

नगरनिवासियोंको भी उससे सहानुभूति हो गई थी। वह गाँवमें जाता, तो लोग उसे अपने पास बिठला कर बातें करते, उसकी चोरीका हाल पूछते और कहते

कि यदि तुम दरिद्र हो जाओगे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। यहाँ तक कि लोग उसे कभी कभी भोज्यपदार्थ भी दे देते थे।

लालपुरमें एक छोटी सी पाठशाला भी थी। अध्यापकका नाम सन्तसिंह था। वह ठाकुर नरेशसिंहका कोई दूरी रिश्तेदार भी था। उसकी स्त्रीका नाम दयामयी था। एक दिन सन्तसिंहने आकर सुखदाससे कहा, "भाई मन्दिरमें क्यों नहीं आते हो, तुमसे और लोगोंसे मेल-मिलाप होगा, तुम्हारा शोक दूर हो जायगा।"

सुखदासने उत्तर दिया, "मुझे मन्दिरमें घुसने कौन देता है?"

सन्तसिंह—"मैं तुम्हें भीतर जानेको थोड़े ही कहता हूँ। बाहर सायबानमें बैठे रहना, वहीं चरणामृत मिल जायगा।"

अन्य कई सज्जनोंने भी सुखदासको मन्दिर आनेके लिये जोर दिया। लोग किसी तरह उसके दुखको भुलवाना चाहते थे, पर सबसे अधिक सहानुभूति दयामयीने प्रकट की। वह बड़ी दयावती स्त्री थी। एक दिन वह अपने पुत्रके साथ कुछ भोज्य पदार्थ लेकर सुखदासके घर पर आई। सुखदासने उसकी आवाज सुनते ही केवाड़ खोल दिये और उसके बैठनेको आसन डाल दिया। दयामयीने बैठते ही कहा "सुक्खू, यह लो, मैं

तुम्हारे लिये कुछ लाई हूँ।" सुखदासने अत्यन्त दीनतासे हाथ फैलाया। उस समय दयामयीको उस पर बड़ा ही तरस आया, बोली, "तुम्हारा यहाँ अकेलेमें बहुत जी घबड़ाता होगा।"

"हाँ घबड़ाता तो है, पर क्या करूँ।"

दयामयी—"क्यों, मन्दिर क्यों नहीं आया करते? मगर तुम इतनी दूर रहते हो कि शायद तुमको मन्दिरके घंटेका शब्द भी न सुनाई देता होगा।"

सुखदास—"नहीं, शब्द क्यों नहीं सुनाई देता, पर वहाँ जानेको हमारा जी ही नहीं चाहता। मुझे देवताओंपर श्रद्धा ही नहीं है।"

दयामयी—"हाय हाय, कैसी बातें करते हो। तुम मन्दिरमें आके देखो तो, दो ही चार दिन कीर्तन सुनोगे तो तुम्हारी श्रद्धा जाग उठेगी। तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा।"

होलीका दिन था। लालपुरमें लोग भंग और शराब पी पी कर नाचते गाते फिरते थे। कहीं नकलें होती थीं। नरेशसिंहके मकान पर भंगका पौसरा चल रहा था। मन्दिरोंमें भी आज भजनकी जगह कबीर और फाग गाई जा रही थी। सारे गाँवमें ऐसा कोई भी मनुष्य न था, जो आमोद-प्रमोदमें मग्न न हो। अगर कोई था, तो सुखदास था। सुखदासने जो प्रेम और विश्वाससे वंचित हो चुका था कभी किसीका अहित नहीं किया, कभी

छल-कपट नहीं किया। उसने केवल परिश्रमसे धनोपार्जन करना ही अपने जीवनका अभीष्ट बना लिया था, पर हाय वह रुपये भी जो १५ वर्षकी गाढ़ी कमाईके फल थे, उसके हाथसे निकल गये। आत्मिक सन्तोषका जो निर्बल सहारा रह गया था वह भी जाता रहा। संध्या हो चुकी थी, वह अपने द्वार पर उदास मन मारे बैठा था। उस आनन्द और उल्लासमें वह कभी नहीं शरीक हुआ और न अब हो सकता था। मालूम होता है कि मनसे प्रेम और हर्षका लोप हो गया। प्राण निकल गया, केवल मृत शरीर रह गया है।

सुखदास इसी दशामें बैठा था कि दयामयी अपने छोटे लड़केको गोदमें लिये आ पहुँची और बोली—"कहो सुक्खू, कैसे उदास बैठे हो? जरा गाँवमें चले जाते तो चित्त बहलता, यह लो मैं तुम्हारे वास्ते कुछ पकवान लेती आई हूँ।"

सुखदास—(थाल लेनेको हाथ बढ़ाते हुए) "कहाँ जाऊँ, कहीं जानेको जी नहीं चाहता। मेरी आदत ही ऐसी है।"

दयामयी—"एकान्तमें बैठे बैठे तुम्हारा जी घबराता होगा। और हरदम उन्हीं रुपयोंकी ओर ध्यान रहता होगा। जो चीज हाथसे निकल गई, उसके लिये सोच करनेसे क्या होगा। भगवानकी ऐसी ही इच्छा थी। वही देते भी

हैं, वही छीन भी लेते हैं। हम मायाके फेरमें पड़कर नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं।

सुखदासने १५ वर्ष हुए, ईश्वरका ध्यान करना छोड़ दिया था। वह भूल गया था कि ईश्वर भी कोई चीज है। बिना किये हुए पापके दण्डने श्रद्धा और भक्तिको उसके हृदयसे मिटा दिया था। इस समय ईश्वर और मायाकी बात सुनकर उसके मनमें श्रद्धाका भाव जाग्रत् नहीं हुआ। उसने उदासीनतासे कहा, "इन बातोंसे मेरे चित्तको शान्ति नहीं होती।"

दयामयी—"कैसी बात कहते हो सुक्खू, और तुम्हारे चित्तको किस बातसे शान्ति होगी। संसारमें कोई काम अपने मनसे थोड़े ही हो जाता है। ईश्वर ही करते हैं और वह हमारे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल होता है। जिसे तुम हानि समझते हो वह वास्तवमें हानि है, यह कौन जानता है? सम्भव है ईश्वरने तुम्हारे मनसे शोकको दूर करनेके लिये ही यह लीला की हो। यह धन नहीं था, तुम्हारा वैरी था। इसीके कारण तुम ईश्वरसे भी बेसुध हो गये थे। और कौन जानता है आज उसने तुम्हारा धन हर लिया तो कल तुमको उससे भी बहुमूल्य कोई चीज दे दे।"

सुखदास उत्सुक होकर बोला, "क्या सचमुच यह सम्भव है? वह मुझे मेरा गया हुआ धन दे देगा?"

दयामयी—हाँ ! उसकी लीला अपरम्पार है, पर पहले वह यह देखेगा कि तुम्हारे चित्तसे लोभ गया या नहीं । जब तक तुम लोभमें पड़े रहोगे वह तुम्हें कुछ न देगा । भक्ति करो, उपासना करो, वह तुमसे प्रसन्न हो जायगा ।"

सुखदास—"कैसे भक्ति करूँ ?"

दयामयी—"मन्दिरमें जाओ, कथा पुराण सुनो, चरणामृत लो, अपनेसे जो कुछ बन पड़े दूसरोंकी सेवा करो, यही उसकी उपासना है ।"

सुखदास—"तब मेरे रुपये मिल जावेंगे ?"

दयामयी—"अभी तुम रुपयोंको लिये हो, वह न जाने तुमको क्या दे देगा । मेरा यही छोटा लड़का रामधन महीनोंसे बीमार था, कोई आशा ही नहीं थी । एक दिन मैं इसे लेकर ठाकुरजीके सामने गई और विनय करके बोली—जब तक यह अच्छा न हो जावेगा, मैं तुम्हारे द्वारसे न हटूँगी । आधी रात तक वहीं बैठी रही । सब लोग चले गये । केवल पुजारीजी रह गये । मुझे भी थोड़ी झपकी आने लगी थी कि इतनेमें इसने आँखें खोल दीं और बोला, "अम्मा, कुछ खानेको दो, भूख लगी है ।" पुजारीने थोड़ासा प्रसाद दे दिया । इसने वहीं बैठे बैठे खाया और बस चंगा हो गया । तबसे आज तक इसका सिर तक नहीं दुखा । वे भक्तवत्सल हैं । अपने भक्तोंकी सदा रक्षा करते हैं । बेटा धनी, सुक्खूको अपना एक भजन तो सुना दो ।"

रामधनने सुखदासकी ओर सन्देहात्मक दृष्टिसे देखा और वह माँके पीछे मुँह छिपा कर खड़ा हो गया।

दयामयी—"सुना दो बेटा, अब यही अच्छा नहीं लगता। सुक्खू, तुम इसका भजन सुन कर प्रसन्न हो जाओगे। कोयलकी तरह चहकता है।"

रामधनकी झिझक कुछ कम हुई। वह प्रशंसा सुनकर अपनी योग्यता प्रकट करनेके लिये तैयार हो गया। जमीन-पर पाल थी, झार कर बैठ गया और यह भजन गाने लगा—'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो।'

जब भजन समाप्त हो गया तो दयामयीने सुखदाससे पूछा—"इसकी आवाज कैसी प्यारी है?"

सुखदासने विरक्त भावसे कहा, "हाँ, बहुत अच्छा गाता है।"

दयामयी—"तो आज ठाकुरद्वारे जाओगे? वहाँ खूब भजन होंगे। कई गाँवसे गवैये, भजनीक आये हुए हैं। ठाकुर नरेशसिंह आज दिल खोल कर खर्च कर रहे हैं।"

यह कहकर दयामयी चली गई। गाँवसे मृदंगकी ध्वनि आ रही थी, पर सुखदास द्वारपर बैठा आकाशकी ओर ताकता रहा। उसने केवाड़ भी न बन्द किये। अब किस लिये दरवाजे बन्द करता? वह अन्धकार जो उसके हृदयमें हो गया था, ज्योंका त्यों छाया रहा।

सातवाँ अध्याय।

दिलीपसिंहका विवाह तीन साल पहले एक बड़े जमीं-दारकी लड़कीसे हुआ था। उसका नाम सबलसिंह था। नरेशसिंहको देहेजमें कई हजार रुपये मिले थे। इतने उच्च कुलमें विवाह करके वे फूले न समाये थे। बहू विवाहहीमें विदा हो आई थी और साल भर ससुरालमें रही थी, किन्तु इसी बीचमें नरेशसिंहको उसके सम्बन्ध-में कुछ ऐसी बातें मालूम हो गई कि उन्होंने बहूको एक दिन भी अपने घरमें रखना पसन्द न किया। वह सबल-सिंहकी विवाहिता स्त्रीसे न थी, वरन् एक ब्राह्मणीसे थी जिसे सबलसिंहने बिठा लिया था। इस दशामें नरेश-सिंह उसे अपने घरमें बहू बनाकर समाजके दोषी क्यों बनते ? तुरन्त उसे मैके भेज दिया और दिलीपसिंहको

कड़ी ताकीद कर दी कि वह अपनी ससुराल जानेका कभी नाम न ले। दिलीप यद्यपि उस स्त्रीको चाहता था, पर समाजके दोषी बननेका साहस उसमें भी न था। अतएव वह अभागिनी दो सालसे मैकेमें रहती थी।

पर दुर्भाग्यवश उसके जानेके दो तीन मास बाद उसकी ब्राह्मणी माताका देहान्त हो गया और छठे महीनेमें सबलसिंहने भी संसार त्याग दिया—उन्हें एक विषधर सर्पने काट लिया। माता पिताके उठ जानेके बाद इस अबलाका मैकेमें कोई अपना न रह गया। सबल-सिंहके पुत्र और समस्त परिवारके लोग उससे पहलेहीसे जलते थे। अब उसे नाना प्रकारके दुःख देने लगे। मुसीबत पर मुसीबत यह और पड़ी कि उसके एक पुत्री उत्पन्न हो गई। वह स्वयं प्रसूतज्वरसे पीड़ित रहने लगी। न कोई वैद्य, न कोई ओषधि, यहाँ तक कि कोई बातोंसे भी दिलको ढारस देनेवाला न था। उसपर नित्य जली कटी बातें सुननी पड़तीं। इससे ज्वरकी ज्वाला और भी तेज होती थी। दिनोंदिन ज्वर बढ़ता गया, वह क्षीण होती गई, यहाँतक कि उठना बैठना मुशकिल हो गया। बेचारी अकेले ज्वरमें पड़ी हुई अपने नसीबको रोया करती। लड़कीकी चिन्ता उसे और भी खाये जाती थी। मेरे पीछे इस अनाथकी क्या गति होगी, यह सोचकर उसकी आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग जाती और हृदय तड़पने लगता।

अंतमें जब उसे अपने जीवनकी कोई आशा न रही तो उसके मनमें पतिके अंतिम दर्शनकी बड़ी प्रबल आकांक्षा हुई। वह उसके चरणों पर सिर रख कर इस कन्याको उसकी गोदमें रख देना चाहती थी। यह एकमात्र उसकी जीवनाभिलाषा थी। उसका मन कहता था कि वहाँ इस कन्या पर लोगोंको अवश्य दया आयगी। कमसे कम उसका पिता तो रक्षा करेगा।

एक दिन रातको वह उठी और लालपुर चली। लड़कीको गोदमें लिये हुए एक एक पग चलना दुस्तर था, किन्तु पतिस्नेह और ममता उसके पैरोंको बढ़ाये लिये आती थी। वह दो तीन कोस आई होगी कि दिन निकल आया। उससे अब एक कदम भी नहीं चला जाता था। कुछ देर एक तालाबके किनारे दम लेकर वह फिर चली और संध्या होते होते लालपुरके निकट आ पहुँची। अँधेरा हो गया था, पैरोंमें खड़े होनेकी शक्ति न थी, भूख, प्यास, और ज्वरकी आँचने शरीरको जर्जर कर दिया था। वह थक कर एक वृक्षके नीचे बैठ गई। उसे मालूम हो गया कि अब मैं कुछ क्षणोंकी और मेहमान हूँ। पर उस अन्धकारमें चारों ओर सन्नाटा था, उसकी निर्बल ध्वनि किसके कानोंमें पहुँचती? कितना विषादमय दृश्य है! अगर वह दो सौ कदम और चल सकती तो उसे सुखदासका मकान मिल जाता।

उसका दीपक अभी तक वहाँसे जलता हुआ दिखाई देता था। और यद्यपि वह अपने पतिसे भेंट न कर सकती, पर उस कन्याको सुरक्षामें छोड़ जानेका संतोष प्राप्त कर लेती। पर वह वहाँसे किसी प्रकार न उठ सकी। उसकी आँखें बन्द हो गईं, हाथ पाँव ऐंठने लगे और कंठ रुँध गया। एक क्षणमें उसके प्राण इस दुःखसागरसे प्रस्थान कर गये। मनकी आशा मनहीमें रह गई।

अबोध बालिका कुछ देर तक तो 'अम्मा अम्मा' पुकारती रही, पर जब वह जरा भी न मिनकी तो लड़कीको भय लगने लगा। माताके शुष्क स्तनको चबाते चबाते वह निराश हो गई थी। निदान अंधकारके भय, क्षुधा, और परिचित मनुष्योंसे मिलनेकी आशा उसे उस दीपककी ओर ले चली जो वह जलता हुआ देख रही थी। यह कहना कठिन है कि माताके जीवित रहते हुए वह इतनी बुद्धिमत्ता दिखा सकती, पर संकटमें सोई हुई शक्तियोंको चैतन्य कर देनेकी विशेष शक्ति है। वह उस निःशब्द अंधकारमें गिरती पड़ती, आशारूपी दीपककी ओर टिकटिकी लगाये चली आती थी। नहीं, इस कठिन यात्राका कारण केवल स्वार्थ नहीं था। उसे अपनी माताके विषयमें एक अव्यक्त शंका भी थी। उसका अज्ञान हृदय कह रहा था कि माता अवश्य बड़े संकटमें है और उसे किसीकी सहायताकी जरूरत है।

सातवाँ अध्याय ।

सुखदास लालटेन जलाए अपने दरवाजे पर चुपचाप बैठा हुआ था। यही समय उसके अशर्फियोंके गिननेका था। इस वक्त वह नितान्त शोकमें डूब जाया करता था। अकस्मात् उसने एक गोरी गोरी नन्हीं सी लड़कीको प्रकाशमें द्वारकी तरफ आते देखा तो वह चौंक पड़ा। वह अशर्फियोंकी चिन्तामें ऐसा मग्न था कि उसे भ्रम हुआ, मानो मेरी अशर्फियाँ ही यह रूप धारण करके मेरे पास आ-रही हैं। सुखदासको पहले दो बार एक गुप्त शक्तिका अनुभव हो चुका था, जो उसके भाग्यकी विधाता बनी हुई थी। अब फिर उसे भ्रम हुआ कि मानो वही दैविक शक्ति उसको यह अद्भुत चमत्कार दिखा रही है। उसने उस लड़कीको गोदमें उठाना चाहा, पर वह न आई और उँगलियोंसे उस तरफ इशारा करने लगी, जिस तरफ उसकी माँ पड़ी थी। सुखदास पहले तो कुछ समझ न सका, पर जब लड़कीने बार बार उसका हाथ पकड़ पकड़ कर उस तरफ इशारा करना शुरू किया तो वह लड़कीका मतलब समझ गया। वह उसके साथ हो लिया। लड़की फिर अन्धकारकी तरफ चली, यहाँ तक कि वह उन झाड़ोंके पास पहुँच गई, जहाँ उसकी माता पड़ी थी। यद्यपि माता प्रत्यक्षतः नींदमें थी, पर वास्तवमें सदैवके लिये सो गई थी। बालिका उसके पास ही खड़ी हो कर 'अम्मा अम्मा' कहने लगी। सुख-

दासने झुक कर ध्यानपूर्वक देखा तो उसे झाड़ीके नीचे एक स्त्री पड़ी हुई दिखाई पड़ी।

इधर तो वह बेचारी सुधर्मा मरी हुई पड़ी थी, और उधर नरेशसिंहके घरपर उत्सव मनाया जा रहा था! सुखदास इस घटनाकी सूचना देनेके लिये सीधा उनके भवनकी ओर चल दिया। जिस कमरेमें आनन्दोत्सव हो रहा था उसमें दो दरवाजे थे। सुखदासने एक द्वारसे प्रवेश किया और वह लड़कीको लिये हुए उनके सामने जा कर खड़ा हो गया। नरेशसिंहने सुखदासको डाँट बताकर कहा, "अरे तू इस समय यहाँ क्यों आया?"

सुखदास—"आपहीके पास आया हूँ। जरा वैद्यजी-को मेरे साथ कर दीजिये।"

नरेशसिंह—"क्यों, क्या बात है।"

सुखदास—"एक स्त्री तालाबके पास एक झाड़ीके नीचे बेसुध पड़ी हुई है।"

कई आदमियोंने सुखदासको चारों ओरसे घेर लिया और वे पूछने लगे, "यह किसकी लड़की है? कौन स्त्री मर गई है? किसका बच्चा है?"

सुखदास लड़कीको हृदयसे लगाये हुए चुपचाप खड़ा था, किसीको जवाब न देता था। इतनेहीमें वैद्य-जी आ गये। उन्होंने सुखदाससे कुछ बातें कीं और तब वे उसके साथ हो लिये। महीपसिंहको भी कुतूहल हुआ। वह भी उनके साथ चला।

वैद्यजी उस स्थान पर पहुँचे और उन्होंने उस स्त्रीका निरीक्षण किया। उसका प्राणान्त हो चुका था। सुखदासने चिन्तित होकर पूछा "क्या अब कोई आशा है?" वैद्यजीने सिर हिला कर जवाब दिया, "अब ब्रह्मा भी आयें, तो कुछ नहीं कर सकेंगे।"

महीप—"कुछ मालूम होता है कि कैसे मरी?"

वैद्यजी—"मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह बहुत दिनोंसे बीमार थी। इसका शरीर कितना दुर्बल है। पुराना ज्वर था। कोई बहुत दीन स्त्री है।"

अब क्या हो सकता था, वहीं दाहक्रियाका प्रबन्ध किया गया। कफनके कपड़े न थे। सुखदास दौड़ा हुआ घर गया और कपड़े लाया। चिता तैयार हो गई। पर आग कौन दे, इस प्रश्नपर देरतक विवाद होता रहा। कोई कहता था, यह ब्राह्मणोंका काम है, पर वहाँ कोई ब्राह्मण न था। वैद्यजी खड़े मुँह ताकते रहे। महीपसे भी कुछ न बन पड़ा। अन्तमें महीपसिंह वैद्यके साथ चल दिये, तो सुखदासने स्वयं जाकर चितामें आग लगा दी। एक क्षणमें आगकी ज्वाला उठी और सारा शरीर जलकर भस्म हो गया। किसीको यह खबर न हुई कि यह स्त्री कौन थी और कहाँसे आई थी। उसी समय जब कि यहाँ चिताज्वालाका प्रकाश फैला हुआ

था, ठाकुर साहबका दीवानखाना मोमकी बत्तियोंसे जग-मगा रहा था! यही संसारकी गति है!

दस दिन तक सुखदास मृतक-संस्कारोंमें फँसा रहा। लोगोंको कुतूहल होता था कि सुखदास जिसका किसी-से रास बास न था, क्यों एक अपरिचित स्त्रीकी दाह क्रिया करनेपर, प्रस्तुत हो गया। इतना ही नहीं वह उसका संस्कार भी प्रथानुसार कर रहा है। मगर सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह थी कि वह उस छोटीसे बा-लिकाका लालन पालन क्यों कर करता है? वह जो मनुष्योंसे भागता था, जिसकी सूरत देख कर गाँवके बालक डर जाते थे, जो एकान्तमें विरक्त जीवन व्यतीत करता था, जिसने कि कभी शिशुपालनका अनुभव नहीं किया था, वह इस लड़कीसे क्यों कर इतना प्रेम करने लगा? उसे इस अनाथा पर क्यों इतनी दया आगई?

दयामयी एक दिन सुखदासके घर पर यह विचित्र दशा देखने गई। संध्याका समय था, सुखदास चूल्हेके सामने बैठा हुआ खिचड़ी पका रहा था और बालिका एक कटोरेको लकड़ीसे बजाकर प्रसन्न हो रही थी। आगकी ज्योतिसे उसका फूल सा चेहरा चमक रहा था। दयामयीने उसे एक नारंगी दी। कृष्ण माँकी गोदसे उतर कर धीरे धीरे लड़कीके पास गया। पहले दोनों कुछ सकुचते रहे, फिर साथ साथ कटोरेको बजाने लगे।

दयामयी बोली—"सुक्खू, तुम्हें इस लड़कीसे बड़ा कष्ट होता होगा, लाओ मैं इसे अपने घर ले जाऊँ। वहाँ बच्चोंके साथ इसका मन बहलता रहेगा।"

सुखदासने लड़कीका नाम ज्ञानी रक्खा था। उससे पूछा। "क्यों ज्ञानी, इनके घर जायगी?"

ज्ञानी दौड़ कर सुखदाससे लपट गई और उसने उसकी पीठ पर सिर रख कर मुँह छिपा लिया।

दयामयी—"तुम तो बहुत जल्द हिल गई।"

सुखदास—"भगवानकी कुछ यही इच्छा है।"

इसके १५ वें दिन महीपसिंहने सुखदासके पास जा कर कहा—"ए सुक्खू मेरी बात मानो। इस लड़कीको पुजारीजीके सुपुर्द कर दो।"

सुखदासने गम्भीर भावसे कहा—"महाराज! मुझे यह लड़की भगवानने दी है। मैं इसे अब नहीं छोड़ सकता। मेरी अशर्फियाँ न जाने कहाँ चली गईं और यह लड़की न जाने कहाँसे आगई। जिस ईश्वरने मेरे रुपये हर लिये थे, उसीने मुझ पर दया कर यह लड़की मेरे आँसू पोंछनेके लिये भेज दी है। मानो मेरी अशर्फियोंहीने यह रूप धारण किया है। यह लड़की चली गई तो मेरे प्राण भी चले जायँगे।"

महीपने अधिक आग्रह नहीं किया। चलते समय उन्होंने सुखदासको १५) रु० दिये और कहा—"इसके

लिये कुछ खिलौने मिठाई आदि ले लेना। जब फिर जरूरत हो मुझसे माँग लेना।"

सुखदास महीपसिंहकी दयालुतासे गद्गद हो गया। वह रुपये न लेना चाहता था पर महीपने न माना।

क्या वास्तवमें महीप इतना दयाशील था? नहीं यह बात न थी। आज दिलीपसिंहकी ससुरालसे एक नाई आया था, उससे महीपको सब समाचार मिल गये थे। उसे अब कोई सन्देह न था कि यह स्त्री दिलीपसिंहकी पत्नी थी और बालिका उसकी लड़की है। उसने नाईको अपने पिताके पास न जाने दिया था। क्योंकि, इस समाचारसे ठाकुर साहबको और भी लज्जा तथा दुःख होता। नाईको ऊपर ही ऊपर लौटा दिया था। यही कारण था कि उस लड़की पर, जो उसकी सगी भतीजी थी, उसे इतनी दया आई थी। उसमें इतना नैतिक बल न था कि लड़कीको खुल्लमखुल्ला अपना लेता, अतएव वह अपनी दुर्बलताको इसी अनाथरक्षाकी आड़में छिपाता था।

सुखदास जो कभी भूलकर भी मन्दिर न जाता था, अब उस बालिकाकी प्राणरक्षाके लिये नित्य मन्दिर जाने लगा। उसकी अशर्फियाँ जिन पर वह जान देता था, उसे प्रत्यक्ष कोई लाभ न पहुँचाती थीं, पर इस बालिकाने उसके जीवनमें एक विशेष रंग पैदा कर दिया—उसका सम्बन्ध सांसारिक बातोंसे करा दिया।

बालिका ज्यों ज्यों बढ़ती गई, सुखदासके जीवनमें भी उसी प्रकार परिवर्तन होता गया। अब वह बहुत कम एकान्तवास करता है। नित्य संध्या समय उस लड़कीको हवा खानेके लिये ले जाता, फूल चुनता और उसके बालोंमें गूँथता। और लोगोंसे भी उसका प्रेम बढ़ने लगा।

वयोवृद्धिके साथ साथ ज्ञानीमें चञ्चलताका भी प्रकाश होने लगा। वह भिन्न भिन्न प्रकारसे सुखदासको तंग करती। बहुधा घरसे निकल जाती और सुखदासको घंटों परेशान करती। यद्यपि वह कभी कभी उसपर झुँझला कर मारनेके लिये तयार हो जाता, पर उसे उससे इतना प्रेम था कि एक ही क्षणमें उस पर दया आजाती और उसके हाथ न उठते। पन्द्रह वर्षके बाद सुखदासका लालपुरके निवासियोंसे मेल-जोल होने लगा। गाँवके बच्चे जो पहले सुखदासके पास आते हुए डरते थे, अब ज्ञानीके कारण उसके घरमें घुसे रहते। वह अब किसी बच्चेको डराकर भगाता न था। ज्ञानीकी तोतली बातें और उसके पालन-पोषणमें वह ऐसा लिप्त हो गया कि उसे अपने लुप्त धनका ध्यान भी न रहा।

यद्यपि लालपुरके अन्य लोग भी ज्ञानी पर तरस खाते थे, क्योंकि वह बालिका अनाथा थी, पर सबसे अधिक प्रेम महीपसिंहको था। वे बहुधा ज्ञानीके लिये कोई न कोई चीज भेजते ही रहते थे।

आठवाँ अध्याय ।

वसन्त ऋतु है और शिवरात्रिका शुभदिन है। आज ज्ञानीको सुखदासके घर आये हुए १५ वर्ष पूरे हो गये थे। लोग तालाबमें स्नान करके शिवजीको जल चढ़ानेके लिये जा रहे हैं। कुछ लोग पूजन करके निकले आते हैं। सुखदास और ज्ञानी भी उन्हींमें हैं। सुखदासके रूप-रंगमें बहुत अन्तर आ गया है। उसकी कमर झुक गई है। केश बहुत श्वेत हो गये हैं। उसके पीछे पीछे एक नवयुवती सुन्दरी हाथोंमें लोटा लिये, सिर झुकाये चली आती है। यही ज्ञानी है। उसकी लटें कंधोंपर छिटकी हुई हैं। शरीर कोमल है, पर खूब भरा हुआ। ज्ञानीने कहा, "पिताजी आज फूलोंके लिये कितना कष्ट उठाना

पड़ा। मैं चाहती हूँ कि अपने मकानके आगे एक बगीचा लगाऊँ, जिसमें भिन्न भिन्न प्रकारके फूल हों। मुझे दया-मयीकी वाटिका बहुत अच्छी लगती है। "

सुखदास—" बहुत अच्छी बात है। मैं संध्या समय कामसे छुट्टी मिलनेके पश्चात् थोड़े देर तुम्हारी वाटिका बनाया करूँगा। इसी तरह प्रातःकाल काम करके पहले कुछ देर काम कर लिया करूँगा। तुमने मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा ? "

ज्ञानी—" तुमसे इतना परिश्रम कैसे होगा ? जमीन खोदना, नई मिट्टी लाना, पाँस डालना यह सब तुमसे न होगा। मैं स्वयं यह सब करना चाहती हूँ। तुम्हें कष्ट न दूँगी।"

इतनेहीमें एक नवयुवक पीछेसे आ गया। यह दयामयीका पुत्र कृष्णसिंह था। उसने कहा, " क्या बात है मैं भी सुनूँ।"

सुखदास—" तुम भी आ गये। ज्ञानी मकानके सामने एक वाटिका लगानेकी बातचीत कर रही थी। "

कृष्ण—" यह प्रस्ताव तो मैं आप करनेवाला था। जबसे महीपसिंहने यह मकान बनवाया है, तभीसे मेरे मनमें यह बात आती रही है कि यहाँ एक वाटिका लग जाती तो अच्छा होता।"

सुखदास—"पर इस गाँवका तो हाल जानते हो। यहाँ मजदूर खोजनेसे भी नहीं मिलते।"

कृष्ण—"मजदूरोंकी जरूरत ही क्या है। मुझे बागमें काम करना बहुत अच्छा लगता है। मैं प्रतिदिन आकर कुछ न कुछ काम कर दिया करूँगा।"

ज्ञानीने कृष्णकी ओर सप्रेम देखकर कहा, "मैं किसीकी मदद नहीं चाहती।"

कृष्ण—"तो क्या मैं भी कोई गैर हूँ? इसमें कष्ट कौनसा होगा? मुझे तो और भी आनन्द आवेगा। पौधे जितने चाहूँगा, महीपसिंहके बागसे उखाड़ लाऊँगा। जब वे सुनेंगे कि तुम यह बाग लगा रही हो, तो वे सहर्ष पौधे दे देंगे। मैं तो समझता हूँ कि अपने मालीको भी भेज देंगे।"

सुखदास—"नहीं, तुम वहाँसे हमारे नामसे कोई वस्तु न लाना। उन्होंने हमारे लिये मकान बनवा दिया और नित्य कुछ न कुछ भेजते रहते हैं। मैं उन्हें अधिक कष्ट नहीं देना चाहता।"

कृष्ण—"पौधोंमें उनके कौन दाम लगते हैं। मैं कल अवश्य उनसे यह जिक्र करूँगा।"

यह बात करते करते ये लोग मार्गके उस स्थान पर आ गये जहाँ दो शाखें हो गई थीं। कृष्ण विदा हो कर एक तरफ चला गया, सुखदास और ज्ञानीने अपने घरकी

राह ली। जब वे अकेले रह गये, तो ज्ञानीने कहा, "मैं अपनी वाटिकामें तरकारियाँ भी लगाऊँगी। उससे हमारी बहुत सी आवश्यकतायें पूरी हो जायँगी।"

जब दोनों घर पहुँचे तो ज्ञानीने आसन बिछा कर सुखदासके लिये एक थालीमें कुछ फलाहार लाकर रख दिया। सुखदास भोजन करने लगा। जब वह भोजन कर चुका तो धूपमें जाकर नारियल पीने लगा। उसने कोई दो वर्षसे लोगोंके कहनेसे हुक्का पीना शुरू कर दिया था। लोगोंने उसे बताया था कि धूम्रपानसे मूर्छाका रोग पास नहीं आता। इसका धुआँ और भी कितने ही कीट-पतिंगोंको नाश कर देता है। वैद्यजीने भी इसका समर्थन किया था। यद्यपि वह तम्बाकू पीने लगा था, पर उसको उसमें कुछ स्वाद न मिलता था। उसे आ-श्चर्य होता था कि लोग धूम्रपानके क्यों इतने अभ्यासी और इच्छुक होते हैं।

ज्ञानीने यद्यपि वाटिका लगानेका मुख्य उद्देश्य सुख-दाससे छिपाया था, पर वास्तवमें वह अपनी माताका एक स्मारक चिह्न बनाना चाहती थी, क्योंकि वह झाड़ी जहाँ उसकी माताका देहान्त हुआ था उस प्रस्तावित वाटिकाके ठीक मध्यमें आती थी। ज्ञानीका विचार था कि उस झाड़ीके चारों ओर सुन्दर सुगन्धित पुष्प लगा दिये जायँ। सुखदासने कई साल पूर्व उसकी माताके

मरनेकी कथा बयान कर दी थी। ज्ञानी प्रत्यक्षतः तो बहुत प्रसन्नवदन रहती पर उसके मनमें यह शोकमय प्रश्न उठा करता था कि मेरी माता कौन थी? वह यहाँ कैसे आई? क्यों आई? उसका घर कहाँ था? उसका रूप-रंग कैसा था? इन प्रश्नोंका उसे कोई उत्तर न मिलता था। वह लोगोंसे सुना करती थी कि सुखदासने मेरा लालन-पालन कितने कष्टसे किया है। अब भी वह सुखदासको अन्य साधारण पिताओंसे कहीं बढ़कर पाती थी। वह उसके लिए इस बुढ़ापेमें कितना परिश्रम करता था, उसके विवाहके निमित्त कितना कष्ट उठा कर धन संचय करता था, उसके भोजन वस्त्रादिका कितना ध्यान रखता था। गाँवमें किसी युवतीके पास ऐसे अच्छे आभूषण न थे जैसे ज्ञानीके पास। ज्ञानीको सगर्व अनुभव होता था कि वह उसके रूप-लावण्य और चाल-ढालको देख कर कैसा मुदित हो जाता है! अतएव वह उसे पिता समझती थी और उससे प्रेम करती थी। वह कभी कोई ऐसी बात न करती जिससे सुखदासको दुःख हो। उसकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करती। पर पितृस्नेह मातृप्रेमका स्थान न ले सकता था। जब वह अन्य माताओंका अपनी सन्तानोंके प्रति प्रेम देखती तो उसका हृदय विदीर्ण हो जाता। वह सोचती, मेरी माता भी ऐसी ही स्नेहमयी होगी। उसकी दीनता और शोकमयी

मृत्युको स्मरण करके वह कभी कभी रोती थी। उस झा-ड़ीके समीपसे वह जब निकलती तो उसे अपनी माकी याद आजाती, रोंगटे खड़े हो जाते। वह कल्पनामें कभी कभी अपनी माताका चित्र खींचा करती थी।

तीसरा पहर था। सुखदास धूपमें बैठा हुआ नारियल पी रहा था कि ज्ञानी आकर उसके समीप बैठ गई और बोली—"पिताजी, हम उस झाड़ीको वाटिकामें मिला लेंगे। मैं वहाँ ऐसे पौधे लगाऊँगी जो कभी मुरझा न सकें।"

सुखदास—"यह बहुत उचित होगा। उस झाड़ीमें जब पीले पीले फूल खिलते हैं तो कैसे सुहावने मालूम होते हैं। पर यह तो बताओ कि वाटिकाकी चारदीवारी कैसी बनेगी। चारदीवारी न रहेगी तो गायों और गधोंके मारे एक पौधा भी न बचेगा।"

ज्ञानी—"यहाँ बहुत से ऐसे पत्थर मिलेंगे जिन्हें ऊपर तले रखनेसे दीवार बन जायगी।"

सुखदास—"यह तो ठीक है पर तुम्हें पत्थरोंके लानेमें बहुत कष्ट होगा। तुम अत्यन्त सुकुमारी हो।"

ज्ञानी (लजाकर)—"आप जैसा समझते हैं मैं उतनी निर्बल नहीं हूँ। मैं तो पत्थर अवश्य लाऊँगी। अगर पत्थर काफी न होंगे तो लकड़ियाँ काट काट कर बाड़ा बना दिया जायगा। देखो, इस खोहमें कितने पत्थर पड़े हैं!"

यह कह कर वह खोहकी ओर चली और बोली "पिताजी! यहाँ आ कर देखो, आज खोहमें कलसे बहुत कम पानी रह गया है।"

सुखदासने खोहमें झाँक कर कहा, "हाँ, पानी हट गया है। लोग इसके पानीसे अपने खेत सींच रहे हैं।"

ज्ञानी—"तो हम लोगोंको अब नहानेके लिये दूर जाना पड़ेगा।"

यह कह कर उसने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और सुखदासके बहुत मना करने पर भी लाकर रख दिया।

नवाँ अध्याय।

ठाकुर नरेशसिंहका कई साल पहले देहान्त हो गया था। अब महीपसिंह घरका स्वामी और उसकी स्त्री केसरी घरकी स्वामिनी थी। यह स्त्री गृह-कार्य्योंमें बहुत कुशल थी। वह कुप्रबन्ध जो नरेशसिंह-के समयमें था अब नाम मात्रको भी न रह गया।

पर महीपसिंहका जीवन उतना आनन्दमय न था, जितना होना चाहिये था। उसके अभीतक कोई सन्तान न हुई थी, हालाँ कि उसकी अवस्था चालीसकी हो चुकी थी। वह बहुधा इसी चिन्तामें पड़ा रहता था। उसे इसके सिवाय और कोई आशा न थी कि किसी बालकको गोद ले ले। उसने अपने मनमें दयामयीके पुत्र

कृष्णसिंहको गोद लेनेका निश्चय किया था। यह नवयुवक बड़ा सुशील और सच्चरित्र था। पर महीपसिंहने इस प्रस्तावको बहुत दिनों तक अपने मनहीमें गुप्त रक्खा कि कहीं केसरी इसे सुन कर दुखी न हो। पर जब अन्तमें दैविक और भौतिक उपायोंसे कोई काम न निकला तो उसने विवश होकर केसरीसे यह चर्चा की। और जैसा भय था, वैसा ही हुआ। केसरीने उसका विरोध किया। उसका विचार था कि जब ईश्वरने कोई सन्तान नहीं दी तो दूसरेकी सन्तानको अपना बना लेना व्यर्थ है। उसको सन्देह था कि ऐसी सन्तान अच्छी नहीं होती। जिन लोगोंने ऐसा किया है, उनको पछ-ताना पड़ा है। उसने महीपसे कहा, "मैं तुम्हें गोद लेनेकी कभी सलाह न दूँगी। इसका फल अच्छा नहीं होता है।"

महीपसिंह—"तुम्हारे मनमें यह विचार क्यों कर पैदा हो गया कि ऐसा सन्तान अच्छी नहीं होती। देखो दया-मयीका लड़का कृष्णसिंह कैसा होनहार और सच्चरित्र लड़का है?"

केसरी—"हाँ, वह अध्यापकके घर रहकर बुरा नहीं हो सकता। पर तुम्हारे यहाँ रहे, तो अवश्य बुरा निक-लेगा। तुम्हें उस स्त्रीकी बात याद नहीं है, जो अयोध्या-स्नानके समय मिली थी। उसने कहा था कि मैंने एक

लड़केको रास पर बैठाया था। जब वह तेईस वर्षका हुआ, तो उसने ऐसा अपराध किया कि देशसे निकाल दिया गया। ऐसी ही और भी कई घटनायें सुननेमें आई हैं। इसीसे मेरा मन हिचकता है।"

ज्ञानमयी जब १२ वर्ष की थी तभीसे महीपसिंहने यह संकल्प कर लिया था कि उसका कृष्णसे विवाह करूँगा और कृष्णको गोद ले लूँगा। इस प्रकार ज्ञानी और उसकी सन्तान मेरी उत्तराधिकारिणी हो जावेगी। केसरीका दुराग्रह उसके उस पुराने संकल्पको नष्ट कर रहा था। ज्ञानीको उसके पैतृक अधिकारको प्रदान करने-का महीपको और कोई उपाय न सूझता था। उसने सोचा, स्त्रियाँ कितनी स्वार्थिनी होती हैं। केसरी इस कामसे मुझे इस लिये रोकती है कि मेरे मरनेके उपरान्त इसके हाथमें कोई अधिकार न रह जावेगा। इस विचारने महीपको बहुत शोकातुर कर दिया। यद्यपि उसका चित्त बहुत ही दुखित हुआ, पर उसने अपने किसी वाक्य या भावसे अपने चित्तकी दशा केसरी पर प्रकट न होने दी। वह पूर्ववत् केसरीसे प्रेम और उसका आदर करता रहा। केसरीको यद्यपि अपने पतिसे सहानुभूति थी, पर वह अपने मनको इस तर्कसे समझा लेती कि संसार चिन्ता-सागर है। यहाँ चिन्तासे कौन मुक्त हो सकता है। महीपको यदि सन्तानकी चिन्ता न होती तो कोई दूसरी

ही चिन्ता होती। इसके साथ ही वह महीपकी सेवा-शुश्रूषा बड़े आनन्द और प्रेमसे किया करती। अतएव उसकी समझमें यह बात न आती थी कि इन बातोंके होते हुए महीपको क्यों सन्तानकी चिन्ता होती है।

पर ज्यों ज्यों दिन गुजरते थे, केसरीको यह अनुभव होता था कि मेरी प्रेम-सेवासे अब पतिका चित्त प्रसन्न नहीं होता। वह कोई ऐसा व्यक्ति चाहता है जो जमीनदारीके प्रबन्धमें उसकी सहायता कर सके। कारिन्दे और सिपाहियोंकी निगरानी अब उससे न होती थी। वह प्रत्यक्ष देखता था कि नौकर मुझे लूट रहे हैं, पर वह न तो उन्हें पकड़ सकता था और न दण्ड दे सकता था, इसलिये मन ही मनमें कुड़बुड़ाकर रह जाता था।

एक दिन महीपसिंह किसी कामसे बाहर गया हुआ था कि दयामयीकी एक बहिन जो समीपहीके किसी गाँवमें ब्याही हुई थी, उससे मिलने आई। उसका नाम यशोदा था। बातों ही बातोंमें रास लेनेकी भी चर्चा आगई। यशोदाने कहा, "तो तुम उन्हें रास लेनेसे मना क्यों करती हो ?

केसरी—"मुझे यही शंका होती है कि कहीं वह लड़का हमसे विमुख हो जाय, तो हमारी क्या दशा होगी।"

यशोदा—"यह केवल तुम्हारा भ्रम है। तुम नहीं जानती हो, मनुष्योंकी अवस्था ज्यों ज्यों अधिक होती जाती है,

सन्तानकी चिन्ता उनके दिलमें प्रबल होती जाती है। निस्सन्तान मनुष्यको अपने सामने अन्धकारके सिवाय और कुछ नहीं सूझता। वह सोचता है, मैं किसके लिये जीऊँ, किसके लिये धन सञ्चय करूँ। मेरी मुक्ति कौन करेगा, मुझे पिण्डा पानी कौन देगा। मैं तुमको यह सलाह दूँगी कि तुम आज ही अपने पतिको इस विषयमें निश्चिन्त कर दो।"

ये बातें केसरीके मनमें बैठ गईं। उसके मनमें यह प्रबल इच्छा हुई कि महीप शीघ्र ही घर आ जाय। अतः वह द्वार पर खड़ी होकर उसकी बाट देखने लगी।

उसे इस भाँति खड़े बहुत देर हो गई। आखिर शाम होते होते महीपसिंह घर पर आये। केसरीने पूछा—"आज क्यों बहुत देर हो गई? क्या कहीं और चले गये थे?"

महीपने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह चुप चाप कपड़े उतार कर रखने लगा। उसका चेहरा बहुत उदास था, मानो हृदयपर कोई बड़ी चोट लगी है। अन्तमें वह चारपाईपर बैठ गया और केसरीसे बोला, "दरवाजे बन्द कर दो। कह दो, इस घड़ी यहाँ कोई न आवे।"

जब द्वार बन्द हो गया तो महीपसिंहने कहा, "मैं यथाशक्ति शीघ्र ही लौट आया, ताकि वह बात जो मैं तुमसे

कहनेवाला हूँ कोई और न कह दे। इस बातसे मेरे हृदयको बड़ा आघात पहुँचा है।"

केसरीने आशंकित हो कर कहा—"मेरे घर तो सब कुशलसे हैं?"

महीप—"हाँ, सब कुशल है। यह चोट किसी जीवित मनुष्यकी ओरसे नहीं, दिलीपसिंहकी ओरसे है। आज मुझे उसकी लाश एक खोहमें मिल गई। सुखदासके घरके पास, जो तालाब है वह खेतोंकी सिंचाईके कारण बिलकुल सूख गया है। आज उसमें दिलीपकी लाश दो पत्थरोंके बीचमें फँसी हुई मिली। मेरी घड़ी और मेरा शिकारी चाबुक भी वहीं पड़ा हुआ है।"

केसरी पहले बहुत व्याकुल हो गई थी। वास्तविक बातके ज्ञात होने पर उसे ढाढ़स हुआ, किन्तु उसे उस आघातका अनुभव न हुआ जिससे महीपसिंहका अन्तः-करण पीड़ित हो रहा था। बोली—"क्या वे उसमें डूब कर मर गये?"

महीपसिंह—"ऐसा जान पड़ता है कि वह उसमें फिसल पड़ा होगा। सुखदासके रुपये भी उसीने चुराये थे।"

यह सुनकर केसरी चौंक पड़ी। वह अवाक् हो कर पतिकी ओर ताकने लगी। या तो उसे अपने कानों पर विश्वास न आया, या वह यह निश्चय न कर सकी कि चित्तके भावको क्यों कर प्रकट करूँ।

महीप—"शवके पास ही सुखदासके रुपये ज्योंके त्यों थैलीमें बन्द मिले हैं। कह नहीं सकता कि इस समय मुझे कितनी लज्जा और शोक है। मरे हुए आदमीको क्या कहूँ। पर दिलीपने कुलको कलंकित कर दिया। अब हम सिर उठानेके लायक न रहे। जब यह बात खुल गई तो फिर अब परदा करनेकी क्या जरूरत! वह स्त्री जिसकी लाश गढ़ेके किनारे झाड़ीमें मिली थी, दिलीपसिंहकी पत्नी थी और ज्ञानी उसीकी पुत्री है।"

केसरीने शोकातुर होकर कहा—"भगवानकी यही इच्छा थी, तो कोई क्या कर सकता था। पर तुमने मुझसे यह भेद छिपाया, इससे ज्ञानीकी बड़ी हानि हुई। यदि तुमने यह बात मुझसे पहले ही कही होती तो हम उस बच्चीके लिये अब तक क्या कुछ न कर डालते। मैं प्रेमसे उसका पालन करती। उसे कुछ रीत्यानुसार शिक्षा देती। मैं उसे इतना प्यारा करती कि उसकी माता भी उससे अधिक न कर सकती। हमारी ही लड़की और हम उससे इतने दिन तक बिलग रहे।" शोकके मारे केसरीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

दसवाँ अध्याय।

रातके आठ बजे थे। सुखदास ऐनक लगाये चिरागके सामने बैठा हुआ था। अशर्फियोंकी थैली उसके निकट एक चौकी पर रक्खी हुई थी। यद्यपि सुखदास एक समय इन अशर्फियों पर जान देता था, इन्हें अपने जीवनका मुख्य अवलम्ब समझता था, पर अब उन्हें फिर पाकर उसे विशेष आनन्द नहीं हुआ। उसे केवल इतना ही संतोष हुआ कि ज्ञानीके विवाहके लिए मुझे अब रुपयाका तरद्दुद न रहेगा, खूब धूमधामसे विवाह करूँगा और ऐसी उदारतासे दान दहेज दूँगा कि लोग दंग हो जायँ। रुपये उसके लिये अब आनन्दकी वस्तु न थे, उसे अब उनके उपयोगसे आनन्द आता था। इसके सिवाय उसके मलिन होनेका एक और

कारण था। वह सरल धार्मिक सिद्धान्तोंका मनुष्य था। वह समझ रहा था कि इन्हीं अशर्फियोंके कारण दिलीप-सिंहकी जान गई। उसे विश्वास था कि भगवान् या अन्य किसी दैविक शक्तिने दिलीपको खोहमें ढकेल कर उसके कुकर्मका दण्ड दिया है। इसी प्रकार कुछ देर तक सोचमें डूबे रहनेके बाद उसने ज्ञानीसे कहा—"जब अशर्फियाँ मेरे पाससे चली गईं तो मैं रातदिन इसी आशामें रहता था कि वे मेरे पास फिर आ जायँ। एक दिन मैंने तुम्हें यहाँ पाया। उस समय तुम बहुत छोटी थीं। तुम्हारा आना मेरे लिए अमृत हो गया, नहीं तो मैं अशर्फियोंके शोकमें पागल हो जाता।"

इतनेमें ठाकुर महीपसिंह और उनकी स्त्री केसरीने मकानमें प्रवेश किया। ज्ञानीने उनके लिये आसन बिछा दिया। सुखदासको विस्मय हुआ कि आज ठकुराइन यहाँ कैसे आईं। ज्ञानीको भी यही आश्चर्य्य था।

महीपसिंहने कहा—"सुखदास, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम्हारे खोये हुए रुपये इतने दिनोंके बाद तुम्हें मिल गये। यद्यपि इसका अत्यन्त शोक और लज्जा है कि मेरे भाईके कारण तुमको यह दुख सहना पड़ा था। उसके लिए मैं हर तरहसे तुम्हारा क्षमाप्रार्थी हूँ।"

सुखदास—"यह सब ईश्वरकी गति है, इसमें आपको कोई खेद न करना चाहिए।"

महीप—"हाँ, इसके सिवाय मनको और कैसे बोध हो सकता है।"

सुखदास—"मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि अशर्फियोंको पाकर मुझे आनन्द नहीं हुआ, क्यों कि मुझे भय होता है कि कहीं उनको पाकर मैं ज्ञानीको हाथसे न खो बैठूँ। ज्ञानी मुझे इन्हीं अशर्फियोंके बदलेमें तो मिली थी।"

महीपने मुसकिराकर कहा—"तुम्हारी शंका बहुत ठीक है, क्योंकि वास्तवमें अब ज्ञानी तुम्हारे पास बहुत दिनों तक न रहेगी। दोनों सुखोंको एक साथ कैसे भोग सकोगे? ज्ञानीका विवाह तो करना ही पड़ेगा।"

सुखदास—"इसमें तो मुझे आपहीकी सहायताका भरोसा है।"

महीप—"मैं इसी लिये तो इस समय तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे तुमसे एक भेद कहना है जिसे सुनकर तुम चकित हो जाओगे। ज्ञानी मेरे भाई दिलीपसिंहकी बेटी है। यह बात मुझे उसकी माताके मरनेके दो चार दिन पीछे ही ज्ञात हो गई थी, पर मैंने तुमसे इसका जिक्र नहीं किया इस लिए कि तुम्हें दुःख होगा। यह तो जानते ही हो कि मेरे कोई संतान नहीं है। मैंने यह निश्चय किया है कि ज्ञानीको अब अपने घर ले चलकर रक्खूँ और उसकी जायदाद उसके हवाले कर दूँ। मैं दयामयीके पुत्र कृष्णसिंहको गोद लेनेका विचार कर रहा हूँ। उससे ज्ञानीका

विवाह कर दूँगा। तुम भी वृद्ध हुए और तुम्हारी सम्पत्ति भी मिल गई, अब यह करघेका काम छोड़ दो। हमारे यहाँ चलकर आनन्दपूर्वक रहो। वहाँ ज्ञानी तुम्हारी आँखोंके सामने रहेगी। तुम्हारा मन बहलता रहेगा।"

केसरीने कहा—"इन्होंने कल तक मुझसे यह न बतलाया था कि ज्ञानी मेरी भतीजी है, नहीं तो मैं इसे यहाँसे कबकी ले गई होती। बेटी, अब तुम अपने घर चलकर रहो। मैं जब तक जिऊँगी तुम्हें अपनी बेटी समझती रहूँगी।"

सुखदासने सजल आँखोंसे ज्ञानीको देख कर कहा—"बेटी, तुम अब मेरी नहीं, ठाकुरसाहेबकी पुत्री हो। तुम्हें यह सौभाग्य मुबारक हो। पर मैं ऐसा न जानता था। तुम अब अपने पिताके घर जाओ, मैं अपनी इसी कुटीमें रहूँगा। जब तुम्हें देखनेको जी चाहेगा, चला आया करूँगा। भगवान्, तुम्हारी लीला विचित्र है!"

यह कहकर सुखदासने एक दीर्घ निःश्वास लिया और वह आकाशकी ओर देखने लगा। ज्ञानीको अब तक वह अपनी लड़की समझता था, पर अब अपनेको धोखेमें न रख सकता था।

ज्ञानीने केसरीकी ओर देखकर कहा—"चाची, आप लोगोंने मुझ अनाथा पर बहुत दया की है और मुझे यह जान कर कि मैं आप ही लोगोंकी सन्तान हूँ, बड़ा

गौरव हो रहा है, पर मैं अपने पिताको छोड़कर आपके शरणमें भी नहीं जा सकती। मैं अपने सौभाग्यपर अपने धर्मपिताके सुख और शांतिका बलिदान न करूँगी। मुझे आगे चलकर भाग्य चाहे जहाँ ले जाय, पर मेरा घर यही है और मेरे पिता यही हैं।"

केसरीने गद्गद होकर कहा—"बेटी, तुमने बहुत उचित बात कही। यही तुम्हारा धर्म है। तुम इस घरमें उस समय तक सानन्द रहो जब तक मैं तुम्हें बेटीके बदले बहू न बना ले जाऊँ।"